दरका हुआ दर्पण में
निहारता हूँ अपने मुख को
लगता है
खण्ड-खण्ड में
विभक्त हो गया है-मेरा अक्स
मुँह, नाक, सिर
सब अलग-अलग
विचित्र, वीभत्स
क्या यह नहीं हो सकता
पुनः एकाकार, समतल?

रनियाँ

थली)

ा की
शाक
ालय
डॉ0
स्मृति

लेखन
और
पछी,

ंग्रह-
लाल
तिलक
कसम
ढे-मेढे
हिन्दी),
न्यास-

थली)
र)

# दरका हुआ दर्पण



राजदेव प्रियंकर

उमेश प्रकाशन
१००,

रनियाँ

थली)

ा की
शक:
ालय
डॉ0
स्मृति

लेखन
ा और
पंछी,

ंग्रह-
लाल
तिलक
कसम
ढे-मेढे
हिन्दी),
न्यास-

मैली)
ार)

DARKA HUA DARPAN (Novel)
By Rajdeo Priyankar

# दरका हुआ दर्पण (उपन्यास)

राजदेव प्रियंकर

Rs. 100=00

---


प्रकाशक : उमेश प्रकाशन 100, लूकरगंज, इलाहाबाद-21

संस्करण : प्रथम 2001

मुद्रक : केशव प्रकाशन, इलाहाबाद

अक्षर संयोजन : एवन स्क्रीनर दरियाबाद इलाहाबाद

मूल्य रुपये एक सौ मात्र

*पूज्य पिता श्री सोने लाल*

*एवं*

*ममतामयी माँ फूलवती देवी*

*के*

*चरण-कंज में*

*सादर समर्पित...*

# अपनी बात

वर्तमान समय में अधिकाश बातों पर अर्थ अपना प्रभाव रखता है। आर्थिक दश से बचने के लिए इन्सान को श्रम और सहयोग की बड़ी आवश्यकता पड़ती है। विषम परिस्थिति में सहयोग के लिए राम प्रवेश को धन्यवाद देता हूँ। साथ ही उन लोगों के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ जिनके स्नेहयुक्त साया तले मेरा विश्रामस्थल है।

अस्तु; रचना में अवगाहन करने के बाद मन में उठने वाले विचार से हमे अवश्य अवगत करावे।

**राजदेव प्रियंकर**

आवाज सुनकर नलनी की नींद उचट गयी। वह कान लगाकर सुनने लगी।

दरवाजे पर उसके श्वसुर जगदम्बी प्रसाद जोर-जोर से रामायण की पाँति दुहरा रहे थे

''तात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिअ तुला एक अंग।

तुल न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सतसंग।।

जय श्रीराम, जय जय श्रीराम!''

उसकी पत्नी जोगनी फड़कती हुई निकट आयी और बोली–''इधर तुम जय श्रीराम की रट लगाते रहो। उधर सब काम गया, भाँड़ मे। ऐसी बहू ब्याह कर लाये जो ......। हुँह......। जब तक बाँस भर दिन नहीं उठता तब तक उसकी नींद नही खुलती।''

जगदम्बी प्रसाद शांत स्वर में बोले–''क्या करोगी, जवानी की नींद मे दर तो हो ही जाती है।''

''इएह, मैं क्या किसी की नौकरानी हूँ। वह सोती रहे और मैं भूखे पेट काम करने जाऊँ।''

जगदम्बी प्रसाद न हाथ से इशारा करते हुए कहा–''बहुत जोर से बोलती हो शात रहो। भूखे मत जाना, कुछ देर ही सही।''

वह कोने में रखी कुदाली की ओर बढ़ा और उसे कंधा पर लेते हुए बोला–''कुछ देर रुक कर जलखइ लेती आना।''

कहते हुए वह शीघ्रता के साथ खेत की ओर चल पड़ा।

नलनी हड़बड़ाकर घर से बाहर निकली। सुबह की स्वर्णिम किरणें धरती पर पसरने लगी थीं।

वह शीघ्रता के साथ हाथ मुँह धोने लगी। उसे अफसोस हो रहा था कि इतनी देर कैसे हो गयी। सबके लिए जलपान बनाना है। आज मेरे ही कारण सारे कार्य में बाधा पड़ेगी। और सभी डाटेंगे, मुझे..... ।

वह भय त्रस्त होकर चूल्हा फूँकने लगी। जोगनी दरवाजे पर से बेटे को पुकारने लगी–''बेटा नरेशऽऽ। उधर क्या कर रहे हो? आज स्कूल पढाने के लिए जाओगे कि नहीं?''

''हाँ हाँ! माँ, मैं आ रहा हूँ।''

''आओगे क्या! इधर तो पाँच पकवान बनकर तैयार है। जो-जो मन मे आता है, करो तुम लोग। पत्नी को चढ़ा लो माथे पर, बाद में पता चलेगा।''

कहती हुई वह आँगन में आई, फिर झटके से खुरपी और टोकरी उठा ली।

डरती हुई नलनी बोली ''माँ जी। रोटी बन गई है। खा लीजिए।''

मैं क्यों खाऊँ? तू पेट भर ठूँस लेना और सो जाना ऐसे अगर बैठी रहूँगी

ता हुआ काम........। देखती हूँ, यही मगला के आगन में। कितना मवर लोग खा-पीकर खेत-खलिहान की ओर निकल जाते हैं। और ई तो । ''

वह अंड-बड बोलती हुई चल पड़ी।

''हें हें फट्ट. .. । भाग करमजरूआ.. . ।'' कौएँ को भगाती हुई नलनी बोल पड़ी-''तू भी मुझे ही दुखः देने आ टपका। एक गई जली कटी बात सुना के. .. । और दूसरा आने वाला है। उसको भी पढाने जाना है। वे भी तो आते ही फटकारने लगेंगे।''

''कौन फटकारेंगे तुझे बहू?'' -मगला की माई आँगन मे कदम रखत ही टपक पडी।

''अब देखो न।'' -रोटी सेंकती हुई नलनी आगे बोली- ''थकावट के कारण आँख ही नहीं खुलती तो मैं क्या करूँ? सवेरे से शाम तक काम ही काम . .। जलपान बनाना, घास लाना, बैलों को खिलाना-पिलाना, दोपहर मे भोजन बनाना, गोबर पॉथना। जरा सुसताने बैठू तो बूढ़ी माँ गरजने लगती हैं। उसे तो सिर्फ खेत का ही धधा है। घर पर जैसे कोई काम ही नही। और देखो न दिन भर कितना भी खटे-मरे, फिरभी दो वक्त की रोटी ठीक से नसीब नहीं होती।''

मगला की माई हाथ चमकाती हुई बोली- ''ई तो बच्चे सबको पढाकर नरेश थोड़ी-सी आमदनी करने लगा। जिससे लत्ता कपडा कर लेते हैं। नहीं तो . ।''

''व भी पढ़ाने क्या जाते हैं। जलपान में थोडी-सी देर हुई कि लाल-लाल ऑखें दिखाने लगते हैं।

इतने पढ़े लिख हैं। फिरभी गुस्सा उसकी नाक पर ही सवार रहता है, हर पल.....। मैं तो तग आ गई हूँ, इस परिवार से. ...।''

मंगला की माई ओसारे की ओर बढ़ती हुई बोली- ''मैं नमक लेने आयी थी।''

''ले लो, ओसारे पर है।'' -हाथ से संकेत करती हुई नलनी ने कहा।

नमक लेकर जाती हुई मंगला की माई बोल पड़ी- ''क्या करोगी, गरीबों के घर तो ऐसे ही होता है।''

नलनी का स्वर व्यग्य से भर उठा- ''हैं....हैं .. । सब चीज का अभाव भी और ऊपर से थप्पर-मुक्का खात रहे लोग . ।

मंगला की माई चली गई। अकेली नलनी सोचने लगी- 'क्या यही है जिन्दगी? ब्याह स पहले कितने सुन्दर सपने देखती थी मैं, पर वे सब टूटकर बिखर गये। रेत के महल की तरह.. ..। सारा का सारा चकना चूर हो गया। किन्तु, मेरी मौसी की बेटी मालिनी, पति के साथ कितनी खुश थी। ओह.....उसकी शादी कितने अच्छे घराने में हुई. ...। जबकि हमदोनों एक ही परिवार में साथ-साथ खेली-कूदी, और जवान हुई। पढ़ाई-लिखाई से लेकर हरएक कार्य मे मैं उससे तेज थी फिर भी मौसी अपनी बेटी को ही अधिक स्नेह देती थी आखिर माँ थी तब न उसकी शादी सोच

लेकिन मैं तो कर्मजली हूँ। बचपन में ही बाप का साया सिर से उठ गया। और माँ उफ..... । भाग भोगा है: जो भी सुनता है, उसके साथ मुझे भी गाली देत है। बेहया की बेटी कहता है। पर मैं क्या कहूँ उसे ...। सापिन की तरह बच्चे को छोड़कर भाग गई।

सिर्फ जन्म देने से ही कोई माँ नहीं बन जाती। कैसे पत्थर दिल की थी वो ...। न जाने कैसे कैसे लोग हैं, इस दुनियाँ में। तब न उस दिन वे साधू कबीर का भजन गा रहे थे।

'कबीरा इस संसार में
भाँति भाँति के लोग।'

पर मेरी तो माँ थी। क्या कहूँ उसे। क्या कृष्ण ने यशोदा को माॅ नहीं कहा। जबकि उनको जन्म देने वाली देवकी थी। लेकिन उनकी बात तो कुछ और थी। आखिर वे थे पुरुष ...। मैं तो नारी ठहरी।

फिर भी मासी बहुत मानती थी। क्या करेगी बेचारी। आखिर उसके भी तो बच्चे थे। कौन माँ अपने बच्चे को अधिक प्यार नही करेगी। उसी के चलते तो मै इस धरती पर जीवित बच गयी।

जब सहारा बनाकर इन्हें भी ईश्वर नहीं भेजता तो क्या मै बच पाती?

दरवाजे पर आवाज उभरी- ''नरेश जी हैं?''

चूल्हे के निकट से ही नलनी ने कान लगाकर स्वर पहचानने की कोशिश की। साथ ही वह उचक-उचककर देखने लगी।

इधर तवे की रोटी जलने लगी। नरेश तब तक समीप आ गया था। उसको ताक झाँक करते हुए उसने देखा। मन संदेह से भर गया।

तवे की जलती रोटी देखकर आग बबूला हो उठा। उसके मुँह से कठोर वाणी निकली- ''बन गया जलपान? उधर क्यों लुच्ची की तरह ताक झाॅक कर रही हो?''

नलनी सचेष्ट हुई। उसे तो भाव ही नही हुआ था कि नरेश इतने सन्निकट खड़े हैं।

''मुँह में जो आता है, वही निकाल देते हो। लाज नहीं आती है-बोलते हुए।'' - शीघ्रता के साथ रोटी निकालते हुए नलनी बोली।

नरेश के मन का रोष दुगने वेग से बह उठा- ''बेशर्म! रोटी जल रही है। उधर ताक-झाँक कर रही हो। कहता हूँ तो लाज मुझे आएगी? तुम्हारा मन स्थिर रहे तब न।''

अपने ऊपर दोषारोपण होते देख नलनी के मुँह से कर्कश आवाज निकली- ''दरवाजे पर से कोई ने पुकारा। मैं उधर की ओर देख ही ली-तो क्या हुआ? मैं बेशर्म हो गयी?''

चुप्प कलमुँही जैसे आँख मुँह चले। वैसे जबान चले

"मैं कहे देती हूँ। ठीक से बात कीजिए।"

"सटाक!"

नरेश ने नलनी के गाल पर तमाचा जड़ दिया।

"जल्दी रोटी बनाकर लाओ। नही तो आज नानी की याद करा दूँगा।"

नलनी का मुख रक्ताभ हो उठा। क्रोध के कारण उसके शरीर में कम्पन-सा होने लगा। जिसे जबरन वह जप्त करना चाहती थी। पर आँखों से अश्रु की कुछ बूँद निकल ही पड़ीं।

नारी कितनी विवश होती है? अपने मन के हर्ष-विषाद को अभिव्यक्ति नहीं कर सकती। आँखों से नीर का बहना उसके लिए अनिवार्य-सा हो जाता है। वही तो एक मात्र अवलम्ब है, जिसे बहाकर वह सतुष्ट होती रहती है। आँसू मात्र विवशता का चिन्ह......।

सबकी अन्तरात्मा में चंडी सा हुँकार भर जाना सहज नही है। अधिकाशतः तो परिस्थिति से समझौता ही कर लेती हैं। "नरेश भैया! मैं तभी से बुला रहा हूँ। तुम जैसे सुन नही रहे हो। भाभी ने पकड रखा है-क्या?"

कहते हुए संजय ने आँगन की ओर कदम बढ़ा दिये। नरेश समझ गया कि वह इधर आएगा ही।

"हुँह! साला जब भी इधर आता है-तो आँगन में आकर ताक-झाँक करने लगता है। इससे पहले भी कई दिन देख चुका हूँ।"

उसने क्रोधयुक्त नेत्रो से नलनी की ओर देखा। उसकी आँखो से अभी भी अश्रुधारा बह रही थी। पर उन आँसुओं को देखने से भी नरेश के हृदय में दया के बदले क्रोध ही उपजा।

"हाँ-हाँ दिखाओ दुनियाँवालो को। मैं निर्दय हूँ। यही न दिखाना है।"

कहते हुए वह जल्दी से वस्त्र बदलने लगा। संजय तब तक उसके निकट पहुँच चुका था।

"कहाँ चले भाई साहब?"

"स्कूल जाना है-पढ़ाने।"

संजय बात तो नरेश से कर रहा था। पर उसकी निगाहें नाचती हुई नलनी पर जाकर टिक गयी।

कुम्हलाये हुए मुख.....। कोमल कपोल पर लुढ़के आँसू को देखते ही वह बोल उठा-"भाभी क्यों रो रही है-भाई साहब?"

नरेश मौन साधे खड़ा रहा।

"शायद आपस में कुछ....।"

अपने भीतरी उफनते रोष को पचा नहीं सका-नरेश। बोला वह-"तुम्हें कोई काम धंधा है या नहीं? बेकार मे दूसरे की बातों में हस्तक्षेप करते फिर रहे हो?"

संजय के चेहरे पर अचरज का आवरण छा गया उसने भीतर ही भीतर

सोचा- 'क्या बात है, बेवजह इतने रोष मे... ..। खैर, मुझे क्या मतलब.. ।'

नरेश का सख्त स्वर सजय के कानो से टकराया-"क्या लेने आये हो?"

"भाई साहब! अपनी कलम दना। एक पत्र लिखना है।"

मुख लटकाये नरेश ने उमके हाथ मे कलम थमा दी। बोला कुछ नही पर एसा लग रहा था-जैसे वह संजय को शीघ्र भगा देना चाहता हो।

उसके मनोभाव को परखते ही सजय वहाँ से चल पड़ा।

आँसू पोछती हुई नलनी ने थाली उठाई। क्या करती बेचारी. . ।

विवशता में उफनते अश्रुओं को भी पचा जाना पड़ता है। पर आँसुओं को दमन करना क्या सहज है? उसने थाली नरश के आग रख दी। किन्तु नरेश सरोष उठा और फटकारते हुए बोला- "दिखा दिया न दुनियाँ को। करो न, तुझे जो करना है। ले जाओ थाली। मुझे भूख नही लगी है।"

कहते हुए वह तेजी से निकल पडा। आँगन में रह गयी, अकेली नलनी! अश्रु के अगाध सागर में स्नान करने के लिए ..... ।

सोचने लगी वह-"मुझसे क्या भूल हुई? मार खाने पर भी मै अपने कर्त्तव्य स नहीं चुकी। फिरभी मुझे ही सजा? आखिर अब मैं करती क्या? वाह रे जालिम! गाली देते हुए भूखे पेट चले गये-किन्तु कितनी पीडा सहनी पडेगी, मुझ कितना कष्ट होगा। इसके बारे मे जानना चाहा। हाय रे मर्द! डाँट-फटकार, मार । यातना... । यही सब तो दे सकते हो।'

उसकी आँखों से अविरल अश्रुपात होता रहा। धरती भीगती रही।

❖ ❖ ❖

विवेक के द्वारा व्यक्त की गयी आशका निर्मूल नहीं होती। क्योंकि वह शका भ्रमजाल से परे होती है।

संजय और नलनी के बीच एक सहज आकर्षण था। उस आकर्षण को स्नेह न कह कर आत्मीयता और सहानुभूति ही कह लें, पर था तो कुछ जरूर. ..। जिसे जानना सहज न था।

मानव मन एक उलझी हुई पहेली की तरह है, जिसे व्यक्ति स्वय भी सुलझा नही पाता। हृदय में कौन-सा विचार कब उठता है। पानी के बुलबुले की तरह. .। और कब भीतर ही भीतर विलीन हो जाता है। इसका पार पाना अत्यन्त कठिन हे।

अपनी ही सारी प्रवृति को इन्सान समझ नहीं पाता है। फिर दूसरों की अन्तरात्मा में बैठना कितना दुरूह कर्म है। फिरभी लोग पल-पल प्रयासरत रहते है, भूल-भुलैया में भटके हुए.....।

सजय की आवाज जब भी नलनी सुनती न जाने क्यों उसके हृदय में हलचल-सी मच जाती। उसके कंठ से जब गीतगगा का सहज प्रवाह बहने लगता तो नलनी जैसे उसमें निम्मजित होने लगती वैसे भी नारी का हृदय स्नेह का सागर होता

है। वह अकेली नहीं रहना चाहती। उसके दिल की तमन्ना रहती है- कि को सहृदय उसके सन्निकट अवश्य रहे। जो अंतरतम की व्यथा को समझे, बूझे। उसके दुख दर्द को बॉट न सके तो कम से कम आँसू पोछने वाले हाथ ही हो।

और जिन्हे अपने पति से ठोकर मिलती हो। हर पल गाली और प्रताड़ण सहनी पड़ती हो। उसकी तो बात ही कुछ और है . .। उसके दिल मे ऐसे पुरुष का ध्यान आ ही जाता है- जो उसके हृदयानुकूल हो।

"भाभी ऽऽ.. . ।" -ऑगन की ड्योढी से आवाज उभरी। नलनी चौक पडी। निकट मे ही संजय को देख कर वह पहले तो घबरा गई-फिर निमिष-भर बाद ही वह आस्वस्त हो गई।

शरीर के अस्त-व्यस्त वस्त्र को ठीक करती रही वह.. । मुख पर अरुणाई फैल गयी। वह उठकर जाना चाहती थी-पर पैर, में जैसे बेड़ी-सी पड गयी।

संजय ने पुन: पूछा- "भाई साहब है कि नही?"

नाकारात्मक ढंग से उसने सिर हिलाया पर बोली कुछ नहीं।

वह उठ कर जाने लगी।

"भाभी, मुझे गलत मत समझना। मै यह कलम वापस करने आया था।"

कहते हुए उसने हाथ बढ़ाया। नलनी ने कलम उसके हाथ से ले ली।

"जब से आया हूँ, देख रहा हूं जो खुशी मिलनी चाहिए। आपके मुख पर मैंने उस खुशी की रेखा को कभी न देखा। आखिर कौन-सी व्यथा के कारण आप अन्दर ही अन्दर घुल रही हैं?"

इस वाक्य ने जैसे नलनी की मर्मस्थली को छू लिया। मन मे उठते आवेग को वह सम्हाल न पायी। नयनों से नीर की कुछ बूँदें निकल पड़ी। जिसे वह शीघ्रता के साथ पोछने लगी। कहीं यह बात भी नरेश न जान ले। वह भीतर ही भीतर प्रकंम्पित हो उठी।

कुछ पल बाद पुन: संजय का स्वर उभरा "आप ठीक से मुझे नही पहचानती हैं। शायद, इसीलिए लजाती है। आपके नैहर मै बराबर जाता हूँ। मिलापुर में मेरी बहन की ससुराल है न। कई बार देख चुका हूँ, वहाँ पर.....। कुछ संवाद भेजना हो तो कहिए ....। इस बीच मैं भी वहाँ जाने वाला हूँ।"

मायके की बात सुनते ही स्त्रियाँ सब कुछ भूल जाती है। उससे वे बेरोक-टोक अपने हृदय की बात बताने लगती है- जो उसके नैहर के हों।

नलनी को भी जैसे सहारा मिल गया था। आखिर पीहर के नहीं हो-लेकिन, वहाँ तक संवाद पहुँचाने वाला तो है। इसी के द्वारा अपनी सारी बात मौसी तक पहुँचाऊँगी। माँ नहीं है तो क्या हुआ। मौसी जरूर सुनेगी मेरी व्यथा कथा कुछ न कुछ उपाय तो जरूर निकल आएगा

इससे पूर्व जो सजय स बाते हो रही थी। उसमे लाज का परदा-सा खडा था। पर, अब वह परदा हट चुका था।

संकोच का बाँध टूटते ही हृदय की बातें निकलने लगी थी।

''मैं सुनती हूँ, यहाँ के किसी का भी सबंध उस गॉव मे नहीं है, फिर . . ?''

''ठीक ही सुनी हो भाभी! मेरा घर तो जतनसेरा पडता है। मैं तो यहाँ मामा क घर पर रहता हूँ। उसी के कृषि कार्य में हाथ बटाने आया हूँ, कुछ दिनो क लिए . . ।''

''मेरी मौसी को जानते है-आप?''

''हॉ हॉ, मैं तो कई बार उसक दरवाजे पर गया हूँ। इसीलिए तो पूछ रहा था। वहाँ तो आपको जब भी देखा, खुशी से चहकते हुए देखा था-भाभी। पर यहॉ तो ...।''

नलनी ऑखो में उमडते आँसुओ को नही रोक पायी। वह बरबस ही बरस पड़ी। हृदय की सारी करुणा-गाथा को उलीचने लगी.....। जिसे वह महीनो से संजाये रखी थी।

वह भूल गयी थी-कि सजय पराया पुरुष है। इस सुनसान ऑगन में उसके साथ बाते करते देख सास-श्वसुर क्या सोचेगे!

नारी जब भावना में बहती है-तो अपना सर्वस्व न्योछावर करने में भी देर नही लगती। पाषाण बनते तो उसे कम ही देखा गया है। देखने से ही वह कोमल, सलज्ज.. . दिखाई पड़ती है। इसीलिए तो उसे प्रेम का प्रतिरूप माना गया है। स्वभाव से ही पुरुष कठोर और नारी कोमल होती है।

घटो गुजर गये। बातों मे दोनों इतने डूब गये थे-कि पता हीं नहीं चला। उसके सास-श्वसुर दरवाजे पर पहुँच गये थे।

शायद, दिनकर अस्त हो चला था। इसलिए वे दोनों खेत पर से वापस आ गये थे। अपनी सास की आवाज सुनकर नलनी चौंक उठी। जैसे स्वप्नलोक में विचरते हुए नीद उचट गयी हो।

उसे यथार्थ का भान हुआ। संजय भी हड़बड़ाकर खड़ा हुआ। और चलते हुए बोला-''मै कल ही आपके मायके जाऊँगा, भाभी।''

उसकी सास ड्योढी पर पहुँच गयी थी। सजय को आँगन स निकलते दख उसकी ऑखें उल्लू की तरह गोल हो गयी ....।

❖ ❖ ❖

जहॉ से विश्वास का अंत होता है, वहीं से संदेह का आविर्भाव होने लगता है।

पति से प्रेम नही मिलने के कारण नलना चिडचिडे की बन गयी थी

सास और बहू में जो स्नेह होना चाहिए, उसका अभाव था। सास की नजर में पहल से ही शकाओं के मेघ घिरने लगे थे।

आज जब एकान्त में आँगन से संजय को निकलते देखा- तो उसने सोचा-पूर्व की शंका सच थी।

नरेश के लौटते ही वह निकट जा पहुँची। और मनगढंत कहानी बनाकर सुनाने लगी।

नरेश सुनता रहा। और पहले से घटी घटना के बारे में सोचता रहा। उसे अपनी माँ की एक-एक बात सत्य-सी लगी।

पुरुष स्वभाव से ही नारी के प्रति शंकालु होते हों तो संदेह का पौधा तुरन्त विकसित होने लगता है। जिसके कारण विवेकहीन क्रोध का जन्म होता है।

क्रोध के कारण नरेश के नेत्र रक्तिम हो चले थे। मुख की रेखा तन गई थी। विमूढ होकर उसने आँगन में कदम रखे।

नलनी घर से बाहर निकली। मुख शांत और कोमल था, उसका......। हृदय की पीड़ा दूसरो के समक्ष व्यक्त कर देने से मन शात हो जाता है। अपनी व्यथा-कथा संजय को सुना देने के उपरान्त नलनी थोड़ी आस्वस्त हो गयी थी। पर पति की आँखों में नाचती घृणा को देखकर वह भयत्रस्त हो उठी। वाणी जो मुख से निकलने वाली थी, कंठ के भीतर ही अवरुद्ध हो चली।

वह शीघ्रता के साथ भीतर गयी। और भोजन परोस कर ले आयी। उसके अन्तरमन में कचोट-सी भरी हुई थी। सोच रही थी, वह सुबह से भूखे ही होंगे।

उसने थाली नरेश के आगे रख दी। और नजर उसके चेहरे की ओर उठायी। क्रोधयुक्त मुख देखकर वह तेजी के साथ आँगन से निकल गई, बचने के लिए..... । किन्तु डर के कारण पसीने से नहा गयी।

अक्सर जिस बात से बचने के लिए इन्सान भागते हैं, उससे पीछा छुड़ाना और मुश्किल पड़ जाता है। अधिक मात्रा मे वही बातें उसके इर्द-गिर्द मंडराने लगती हैं।

उसे आँगन से निकलते देखकर नरेश को और अधिक गुस्सा चढ गया।

'खाने के वक्त भी नहीं टिक पाती है। टिकेगी कैसे? चित्त स्थिर रहे तब न, माँ झूठ नहीं बोल रही थी। इसको निकाल देने में ही भलाई है। जब तक रहेगी ससुरी के-तब तक मेरी छाती पर मूँग दलती रहेगी। मुझको कुछ नहीं समझती है, इसका मतलब.....। थोड़ा भी भय हो तब न! सवार हल्का हो तो घोड़ी दुलत्ती मारेगी ही।' उसके मुँह से कर्कश स्वर उभरा-"किधर गयी तू? किस भतार के पास? सीधे खाउँगा-कि पानी भी पीउँगा.. .।"

डरी सहमी नलनी कोई दूर तो थी नहीं। बस घर की ओट में खडी थी दौडती हुई आयी पर लोटा उठाने से पहले उसके मुँह से मद्धिम आवाज निकल भी गयी

''किस भतार के पास जाऊँगी? बोली पर तो जैसे रोक ही नही है। जैसे अपना रहे, वैसे दूसरे को समझे।''

अत्यधिक क्रोध में लोग कर्त्तव्य अकर्त्तव्य को भूल जाते हैं।

नरेश ने झपटकर लोटा उठाया। नलनी की ओर जोर से फेंक दिया।

सिर से लोटा टकराते ही उसकी ऑखों के आगे लाल-पीली धारियाँ चमक उठी। लडखड़ाकर वह बैठ गयी।

''गे. .माई ....गे.....माई . । मरि गेलियो गे . ..।''

रक्त की हल्की-सी धारा उसके कपोल की ओर बढने लगी। उसके करुणा क्रदन से नरेश के दिल पर कोई असर नहीं हुआ।

गरजते हुए वह उठा, और बाल पकड़कर खीचने लगा।

''बेहया! निकल जाओ मेरे घर से.....।''

रोती हुई नलनी बोली-''छोड दो मुझे. निकल जाती हूँ। पता नहीं, कौन कुकर्मी रक्षसवा के पल्ले बॉध दी गई, मुझे.... ।''

उसकी सास गरजती हुई ऑगन मे आई। ''मेरा बेटा रक्षसवा है। निकलो लुच्ची मेरे घर से.....। तुम्हारे जैसे हजार दुलहिन ला दूँगी, मै अपने बेटे को. ...।''

नलनी रो-रोकर गाने लगी-

''अगिया लगेबो मे बजर गिरेएबो

तो रे घर रे निदर्दा

केहन कठोर तोहर छाती रे बेदर्दा.. . ।''

''इएह, देखो न, नाटक कैसे पसारती है। निकलो यहाँ से।''

उसकी सास चॉटा बरसाने लगी। कराहती हुई नलनी निकल पडी। पर, दरवाजे पर आते- आते जैसे उसके पाँव में बेड़ी पर गई थी। कैसे जाएगी इतनी दूर, अकेली... .।

गौतम ऋषि की पत्नी अहिल्या तो पति द्वारा लांछन लगाने पर पत्थर बन गई थी।

पर नलनी तो वैसा नहीं कर सकती थी।

❖ ❖ ❖

संजय ने जब से खबर दी कि नलनी के ससुराल वाले उसे दुख देते हैं, तब से रामेसरी चिन्तित रहने लगी। आज वह द्वार पर बैठकर उसी के बारे में सोच रही थी।

'एक समय था-जब वह स्वयं अपने परिवार मे हुक्म चलाती थी। अब तो बेटे-बहू का जमाना है। सारा कार्य उसी के अनुसार करने पड़ते हैं। उसकी आन्तरिक इच्छा थी--कि नलनी को कुछ दिनों के लिए बुला लिया जाय।'

पर वह जानती थी कि बेटे-बहू को यह बात अच्छी नहीं लगेगी, आखिर बात में अडचने डालते हैं अब वे लोग

वह सोच रही थी, 'आखिर नलनीके भाग्य में भी क्या लिखा है, बचपन से दुख ही दुख . . । माँ ऐसी बेहया निकली–जो बच्चे को छोड़कर दूसरी शादी रचा ली। छिनाल कहीं की.. ..।

तब न लोग कहते है–औरतो का मन क्षण-क्षण में बदलता है। बचपन में कैसी थी, व्रत उपवास सब करने वाली । और जवान होते ही उसने गिरगिट की तरह रंग बदल लिया।

मैं कितना करूँ, पाल पोसकर शादी रचा दी। अब वह सवाद भेजती है कि इस घर में उसका गुजारा नही। तो यहाँ क्या तेरी माँ खजाना दे के गई है–जो तुझे बैठाकर खिलाऊँगी।'

उसके मन में शका उपजी। 'किन्तु किसी को नहीं भेजा गया तो कही भागकर न चली आवे। बहू के पास बात चलाती हूँ–तो मधुमक्खी क छत्ता जैसे मुँह लटकाये फिरती है। अब मैं बुढापे मे क्या करूँ? कैसे इस समस्या का निदान होगा?

विचारो के भँवरजाल मे रामेसरी देर तक डूबती उतराती रही। उसे चारो ओर लाचारी ही नजर आयी।

पडोस की मुशहरनियाँ वाली के स्वर से उसके ध्यान का क्रम टूटा।

"तू यहाँ दरवाजे पर बैठी हो–और उधर नलनी आँगन मे बैठी रो रही है।"

एकाएक चमक उठी-रामेसरी... .। जैसे देह से जलती चिनगारी का स्पर्श हुआ हो।

"ऐं . .। कब आयी?"

जैसे उसने स्वय से प्रश्न किया हो। सरोष उठी वह।

"आज उसे खूब फटकारूँगी। कितनी कठिनाई से घर-वर ठीक किया। शादी रचा दी। सोच रही थी कि अब अपने घर मे रच-बस जाएगी। पर यह क्या ..? आखिर भाग कर चली ही आयी। उसके ससुराल से कोई आएगा–तो कैसे मुँह दिखाऊँगी? कहेगा, यही सब सिखाया गया था-इसे। छूलाही कही की . .। जाती हूँ, दो थप्पर मुँह पर जड़ दूँगी। सोचती होगी जा रही हूँ, बड़े स्नेह से रखेंगे; हथली पर.....। इसे तो लगता है, दूसरा वर तैयार खडा है, ब्याह के लिए! बुद्धि रहे तब न. ।"

आँखे तरेरती हुई वह आँगन में गई। पर नलनी को देखते ही क्रोध धीरे-धीरे घटने लगा।

ससुराल जाते समय कैसे खिली हुई थी। पुष्ट देह, रक्तिम कपोल, आँखों से फूटती हुई आभा न जाने कहाँ सब कुछ लुट गई। लग रहा था, जैसे महीनो से बीमार हो ....।

कृषकाय तन-बदन, कालिमायुक्त कपोल, आँखो में अवसाद.....!

वह हिचक-हिचककर रो रही थी। रामेसरी मन में व्यंग्यबुझे तीर लेकर आयी थी। पर नलनी क आँसूरूपी ढाल पर टकराकर वह तीर तत्क्षण ही टूट चुका था

उसकी जगह स्नेहसुमन खिल उठे पर वह बाली कुछ नहीं नलनी मन ही मन कॉप रही थी। किन्तु उसकी व्यथा का कौन जानेगा/

पड़ोस की बुढिया दादी आ पहुँची। उसकी आँखों में अचरज के भाव थे। हाथ चमकाकर बोली वह–"अरी नीलू! क्यों खानदान की नाक कटानी है? इस घर में कभी कोई भागकर आयी थी। देखो तो भला... । जब मन काबू में नहीं रहा तो किसी के द्वारा खबर भेज देती।"

नलनी के मुँह से बोल नहीं फूट रहा था। हिचक-हिचक कर रोने के कारण उसका सिर हिल रहा था। किसको क्या जवाब देती बेचारी... ?

बूढी दादी उसके सिर से आँचल खीचती हुई बोली–"अरे, दुलहिन की तरह घूँघट क्या काढी हुई हो। बोलोगी कुछ, तब न समझूँगी।"

रामेसरी की बहू बडी देर से वहाँ खड़ी थी। बोल उठी वह–"क्या जवाब देगी, दादी! सब दिन से मुँहफट है, सास से झगडकर भागी होगी। आखिर जबान पर लगाम हो तब न। मैं भी तो ससुराल में रहती हूँ कहे कोई, मेरे बारे में . .।"

भिनभिनाती हुई वह घर के अन्दर चली गई। रामेसरी उसके निकट बैठ गई थी। वह जानती थी, नलनी वेसी है नहीं, जैसा ये सब सोच रही है। आखिर कुछ कारण तो होगा।

उसने आँसू पोछ दिये।

"तुम तो मेरी दशा देख ही रही हो–नलनी। इसके बावजूद भी अपने जानते हुए हमने अच्छे घर में ब्याह दिया। फिरभी इस तरह से भागोगी–तो तुम्ही सोचो।"

बहुत देर से जमे मेघ जैसे एक ही बार बरस पड़े।

"मैं स्वय नही भागी–मौसी। वे लोग मुझे पीट-पीटकर घर से बाहर निकाल दिये।"–आँखो से आँसुओं का सैलाब-सा उमड़ पड़ा।

"मैं कैसे जानूँगी? भागी हो या भगा दी गई हो? सब तो यही कहेंगे कि तू ससुराल से भाग कर आयी है।"

"अब मैं तुझे कैसे समझाऊँ–मौसी! तुम्ही सोचो कि इतनी गिरी हुई हूँ। तेरी छाया में ही में पल कर जवान हुई। तुम्हारी दी हुई एक-एक सीख की बातें मुझे याद हैं।"

"फिर भी तुम.....।"

"तुझे विश्वास नहीं होता–मौसी! तो देखो .. ।"

उसने सिर से कपड़ा हटाकर माथे पर पडी चोट दिखलाई। अभी भी वहाँ खून का थक्का-सा जमा हुआ था। बायें गाल पर उँगली के निशान पड़े हुए थे।

"मौसी! तुम्हारी बेटी भी इतनी मार खाकर आती–तो क्या तुम यही कहती?"

रामेसरी का दिल पिघल उठा वह रुऑसी सी हो गई आँखों से कुछ बूँदे निकल ही पडी

"मेरी लाचारी तो तुम देख ही रही हो, नलनी। अब माथा तुम्हा ...।"

"मैं सोच चुकी हूँ मोसी! तुम्हारे घर पर ही नौकरानी बनी रहूँगी पर वहाँ न भेजो। जब सारी इच्छा मे आग लग ही गई-तो ...।"

"ऐसा कैसे सम्भव होगा-नलनी? कौन जवान बेटी को घर पर बिठा रखेगा? क्या कहेंगे लोग?"

"तो अच्छा होगा। मुझे मार ही डालो।"

वह फफक-फफककर रोने लगी।

"मत रोओ। आखिर, कोई न कोई राह तो खोजनी ही होगी।"

दिवाकर की कोमल किरणें आसमान से उतर आयी थीं और दूब की टुनगी पर पड़ी ओस को धीरे-धीरे सहला रही थीं।

नरेश दरवाजे पर चिंता से आवृत होकर बैठा हुआ था।

"क्यो भैया, भाभी को नहीं ला सके? अभी कह रहा हूँ तो ध्यान नहीं दे रहे हो, बाद मे जब भाभी दूसरे की पत्नी बनकर चली आएगी तो देखने में अच्छा लगेगा न ....।"

अपने चचेरे भाई का यह वाक्य उसके कानों मे शूल की तरह चुभ रहा था जिससे टीस पैदा हो रही थी।

अगर मस्तिष्क रुग्ण रहे तो शरीर स्वस्थ रहने में भी कोई लाभ नहीं, क्योंकि जहाँ से क्रिया का सृजन होता है, वहीं बार-बार हथौड़े की चोट पड़ती रहती है, और शरीर पर स्वतः व्याधि का साया मंडराने लगता है।

वह विचारों के कूप में निमग्न हो गया था। 'थोड़ी सी मार पड़ी तो उसने चंडी का रूप धारण कर लिया। हुँह पति डाँट-डपट नहीं देगा तो कैसे होता है। अपने मन से जिधर बहकना हो, बहकती जाय तो बड़ा अच्छा! है तो महामूर्ख .. जानेगी क्या। अरे, हमने तो सिर्फ मारा, डाँट-डपट दिया। हमारे इष्ट पुरुष श्रीराम ने तो चौदह वर्षों का वनवास दे दिया था। अपने आपको इतनी बड़ी सती-साध्वी समझ रही थी तो कष्ट सहकर भी रह कर दिखाती। थोड़ा-सा इधर-उधर हुआ कि फुर्र. ..।

घर से पाँव निकालते वक्त लाज भी नहीं आयी।'

सारा क्रोध दूसरे पर उतारने के बाद व्यक्ति जब थक जाता है तो एकान्त उसे स्वयं सोचने का मौका देता है।

सच और झूठ का द्वंद उसकी आत्मा में होने लगता है।

आखिर नलनी ने ऐसा क्यों किया? इस प्रश्न के बारे मे नरेश जब भी सोचता तो उसका विचार बवंडर का रूप धारण करने लगता।

'आखिर हमने उसे दिया ही क्या? न अच्छा कपड़ा, न अच्छा भोजन, फिर भी वह इन सारी बातो के बारे में कुछ न बोली। चुप रहना ही उसके लिए काल बन

गया मैं तो समझता था कि वह पूरी तरह प्रसन्न है पर वह तो व्यथित थी फिर भी मै उसकी अतरात्मा के घाव का और अधिक कुरेदता रहा। स्नेह के बदले झिडकियाँ देता रहा। व्यंग्य के पैने बाण से आहत करता रहा। आखिरकार क्या करती बेचारी....? पर अब तो उसे आ जाना चाहिए! अकेले मे मिलती तो कुछ और कहता मैं .. ।

ओह... ! स्थिति को सम्हाल न सका मैं। उलटे दूसरी रामकहानी शुरू हो गयी। इतना होने के उपरान्त कोई भी स्त्री कैसे टिक सकती? मैं कुछ कह भी दूँ तो क्या उस पर वह जल्दी विश्वास कर लेगी? इतनी जल्दी न घृणा मरेगी और न प्रेम पनप सकेगा। प्रेम के लिए तो चाहिए-आत्मविश्वास! यहाँ पर तो विश्वास का मूल ही समाप्त हो गया। संदेह ने उसे क्षत-विक्षत कर डाला।'

"चिन्तित क्यों हो-बेटे?"

नरेश अपनी माँ के प्रश्न पर चोक उठा। सचेत होते हुए बोला-"मै चिन्तित कहाँ हूँ।"

नरेश के पिता जगदम्बी प्रसाद देर से वहाँ खड़ थे। उनकी अनुभवी आँखे नरेश के मुख पर फिर रही थी। निकट आकर बोले वह-"बेटे! एक बार जाकर बहू से मिल लो। और उसे ले लाओ।"

नरेश के बदले उसकी बूढी माँ बोल पडी। "कहाँ जाएगा मेरा बेटा? उसी लुच्ची के पास, जिसे शर्म भी नहीं होती। तिल को बनाया ताड, छोटी-सी बात का पहाड़. ।"

"अरी तू नही समझती है-नरेश की माँ। पति-पत्नी में ऐसे ही होता रहता हे। अब हमारे जमाने के लोग नही हैं, ये सब।"

"मैं क्या नहीं समझती हूँ? खुशामद पर खुशामद.... । मै सोने के बदले मे टीन का कनस्तर ले आयी थी। मेरा बेटा चाहेगा न, तो उससे अच्छी दुलहिन पैर पूजने के लिए कभी भी आ सकती है। गया तो था एक बार, क्या कहा। हुँह, उल्टा चोर कोतवाल को डाँटे। आप क्या जानेंगे-त्रिया चरित्र! मै खूब समझती हूँ, छूलाही को....।"

"नरेश की माँ बात को समझो और चुप रहो। अगर ऐसा मुँह रखोगी तो कोई भी आएगी वैसे ही फसाद करती रहोगी तुम। तेरी तो सब दिन से आदत ही खराब.. ।"

नरेश की माँ बरस पडी-"मेरी कौन सी आदत खराब है? आपको भी देखा हमने। कैसी बहू लाये। बात-बात पर काली मैया बनकर युद्ध करने को तैयार .। इसी से समझती हूँ, कितनी समझदारी है, आपके पास!"

जगदम्बी प्रसाद झुँझलाकर बोला-"ऐसी ही बात पर तुम सब काम को बिगाडकर रख दोगी। कई बार देख चुका हूँ मैं ।"

कह देती हूँ मुझे दोष मत दीजिए इस घर की इज्जत का बचाने के लिए

मैंने क्या नही किया? उलटे मुझ पर दोष ...। इस बारे में मैं कुछ नहीं कहूँगी अब नरेश ...। पर पीछे मुझे कोई दोष मत देना।"

इस वक्त नरेश को अपनी माँ पर भी क्रोध आ रहा था, पर चुपचाप सब सुन रहा था–सब कुछ ...। पल भर बाद जगदम्बी प्रसाद के मुख से अनायास ही निकला–"बेटा। पति-पत्नी का सम्बन्ध है, कोई मिट्टी का घरौंदा नहीं, जिसे जब चाहा तोड़ डालो। शादी ब्याह का मामला है। इस मामले में इतनी जल्दबाजी ठीक नहीं।"

नरेश को अपने पिता की बातें कुछ हद तक सही लगी, लेकिन सारा दोष माथे लगते देख, वह कुछ बोलने के लिए विवश हो गया।

"आप कहते हैं तो ठीक है, पिताजी, पर शादी ब्याह के मामले में बड़े-बुजुर्गों को समझकर काम करना चाहिए। थोड़ा-सा खानदान पर भी निगाह रखनी चाहिए।"

"बेटा! वैसे तो मैं किसान हूँ, भूमि मे संघर्ष करने वाला....। फिर भी जहाँ तक मेरा अनुभव है, उसके आधार पर मैं यही कहूँगा कि अच्छे अच्छे खानदान मे भी बुरे लोग पैदा होते हैं। और बुरे खानदान में भी बड़े बड़े विवेक वाले लोग पैदा हुए हैं।"

"फिर भी पिताजी, कुछ अंदाजा तो रखना ही पड़ेगा।"

"क्या अंदाजा रखेगा–बेटे? कोई भीतर से आत्मा को चीर फाड़ कर तो नही देखता। मेरी बात मानो, तुम चाहो तो बहू को सुधार सकते हो।"

नरेश की बूढ़ी माँ टपक पड़ी–"तो इसका मतलब मेरा बेटा खुशामद करने जाएगा, बार-बार ...। इएह, इतना फिजूल नहीं है।"–उसकी व्यंगभरी निगाहें अपने पति पर नाचने लगी। पर पति की आँखों में गुस्से की झलक देखकर वह बुदबुदाती हुई वहाँ से चल पड़ी।

नरेश की ओर मुखातिब होकर जगदम्बी प्रसाद बोला–"बेटे! एक बार कोशिश करो। समझदार लोग तो बेवकूफ को भी रास्ते पर ले आते हैं।"

उठते हुए नरेश बोला–"ठीक है, आप कहते हैं तो लाचारीवश जाना ही पड़ेगा।"

जगदम्बी प्रसाद अपनी जमीन की ओर जाते हुए बुदबुदाया–"जा घट प्रेम न सचरे सो घट जानु मसान।"

उसका मन सोचों के जाल मे पूर्णत- उलझ चुका था।

❖ ❖ ❖

नलनी के विषय मे जानकारी लेने हेतु नरेश कई दिनो के बाद ससुराल हुँचा। वह भी समाज के लोगों के बार-बार कहने पर....। विशेषकर रामधन की ति उसे अभी भी याद आ रही थी।

उस दिन बूढ़े काका रामधन निकट में बैठकर समझाने लगा था–'बेटे, वहाँ जाकर पूछताछ कर लो। ऐसा न हो कि लड़की वहाँ नहीं पहुँची हो तो लेने के देन पड़ जाएँगे। कहीं मुकदमा दायर कर दिया तो लड़की कहाँ से हाजिर करोगे। नही रखना हो तो दस समाज के बीच उसे तलाक दे दो। नहीं तो बाद में पछताना पड़ेगा।

शिवा बीच में ही टपकते हुए बोला था–''सो उसे रखेगा क्यों नहीं? दूसरा कोई इन्द्र की परी आएगी, ऊँचे खानदान वाली . . । शादी ब्याह में तो थोड़ी अपनी भी औकात देखना चाहिए। एक तरफा सोचना तो . . ।''

अपने गाँव के लोगों द्वारा कही गई एक-एक बात अभी भी उसके मस्तिष्क में नाच रही थी। फिर भी उसे यहाँ बैठना बड़ा कठिन-सा लग रहा था।

गहरे अनजान कुँए में छलाँग लगाने की तरह. . ।

उस दिन तो उसने सोच लिया था कुछ भी हो जाय, मै उसे पुनः वापस लाने नही जाऊँगा। किन्तु विवशता मनुष्य से जो न करावे। ऊपर से मुकदमा का भय। लाचार होकर उसे जाना ही पड़ा था।

पर आज उसे एक परिवर्तन सा दिख रहा था। दरवाजे पर बैठे हुए आधे घंटे गुजर गये थे। लेकिन कोई पूछने वाला तक नहीं आया था।

कहाँ सालों, सलहज की स्नेहसिक्त बातें. . . । और कहाँ यह रूखा व्यवहार . . ।

उसने सोचा 'ये तो सब इन औरतियों का कमाल है। नहीं तो इससे पहले ऐसा कहाँ हुआ था। ससुराल में औरत चाहे तो गूती दिलवा सकती है और वह चाहे तो कृष्ण बना सकती है। खैर, वहाँ मेरा राज्य है तो यहाँ इसका। लेकिन आज कुछ फरक हो गया है। चाहे मेरे साथ चले या नही तो रहे सब दिन के लिए. . . ।'

लोटे में जल लिए उसकी सलहज कांती आयी। लोटा सामने रखती हुई बोली–''कहिये कुशल तो है?''

भादो महीने के मेढ़क जैसा गाल फुलाये नरेश कुछ पल तक चुप रहा। फिर बोला-''भाभी! क्यों घाव पर नमक छिड़कती हो। जिसके सर पर ऐसी बहया औरत भाग नचाने पहुँच जाएगी। उससे कुशल क्या पूछती हो. . .।''

गुस्से में उसके मुँह से थूक उड़ा। उसके साथ ही जैसे विष के छोटे-छोटे कण भी निकलने लगे।

कांती का मुँह विस्मय से फैल गया। सोची हुई सारी बातें कपूर की तरह एकाएक उड़ गई. . .। वह पूछने लगी–''क्या हुआ? कुछ कहियेगा तब न जानूँगी।''

ओट में खड़ी रामसरी सारी बातें सुन रही थी। वह छिपकर और समीप चली आयी।

कहेंगा क्या इसीलिए लोग देखकर शादी रचाते हैं

रामसरी के कान पूरी तरह सजग हो गये

नरेश आगे बोला—"अच्छे खानदान में चोरियाँ और छिनाल औरतें ना होती। किन्तु ई तो उससे भी आगे निकल गयी।"

"क्या कह रहे हैं—आप!" हाथ चमकाती हुई कांती बोली—"मुझे तो विश्वास नही हो रहा है।"

"भाभी! विश्वास तो मुझे भी नहीं हो रहा था' पर आँखों देखी बात को झूठ कैसे कह दूँ?"

नकारात्मक अंदाज में सिर हिलाती हुई कांती के कंठ से स्वर फूटा—"मुझको तो अपनी ननद पर पूरा भरोसा है।"

"भरोसा है.. .हाँ. ..हाँ ऽऽ. . क्यों नहीं होगा भला। आखिर खानदान की बात को कौन नही ढकना चाहेगा।"

खानदान के विषय मे ऐसी बात सुनकर रामसरी की देह में आग सी लग गई। वह जैसे भूल ही गई कि उसके सामने दामाद बैठा है। सारी मर्यादा को तोड़ती हुई वह बाहर निकली और बोलने लगी—"बहू ऽऽ. ..। इधर सुनो, कह दो उनसे कि खानदान के बारे मे कोई बात मत बोलो—दरवाजे पर खड़े हो ..। आखिर बात बोलने का भी एक ढंग चाहिए।"

नरेश आवेश में खड़ा हो गया। उसे ऐसी आशा नहीं थी। सच्ची बातें इसी तरह लोगो को कड़वी लगती हैं।

रामेसरी सामने आ गयी थी।

"कौन सच्चा है और कौन झूठा। यह मै कैसे समझूँगी। जानवरों की तरह पीटते है. ..। उस खानदान के लोग घटिया नहीं हुए और मेरा खानदान घटिया हो गया।"

क्रोध को पीते हुए नरेश कुछ पल खडा रहा फिर बोला—"करम तो मेरा उसी दिन फूट गया, जिस दिन सब ने ऐसी जगह शादी रचा दी।"

बीच-बचाव करती हुई कांती उसे पुन. बैठाने लगी। और बोली—"शांति से काम लीजिए। शादी-ब्याह का सवाल है। इतना गर्म होने से तो काम नहीं चलेगा।"

नरेश ने कांती का हाथ झटक दिया।

"अगर इस सम्बन्ध को बरकरार रखना है तो अभी, इसी समय मेरे साथ विदाई हो जाना चाहिए। अगर साथ नहीं गयी तो समझिये तलाक....।"

कांती आवाक् होकर उसका मुख देख रही थी। रामेसरी इससे पूर्व ही नलनी से बात कर चुकी थी। नलनी ससुराल जाने के लिए कतई तैयार नहीं थी। उसने जाने की बात को साफ शब्दों मे इनकार कर दिया था। पूरी कोशिश करके हार चुकी थी—रामेसरी।

वह सोच रही थी। समय का अंतराल उसके घाव को भरेगा। अन्तर मन की व्यथा मिटेगी। तब हो सकता वह ससुराल जाने के लिए फिर तैयार हो जाए। पर इससे पहले ही दूसरा नाटक शुरू हो गया था।

काती का व्यंग्ययुक्त निगाह [illegible] की ओर चल पड़ी।

दरवाजे पर खड़े वृक्ष की कुछ सूखी पत्तियाँ [illegible] साथ ही एक परिन्दा पश्चिम की ओर उड़ चला।

❖ ❖ ❖

शर्म की शृंखला बड़ी मजबूत होती है, इसे छिन्न-भिन्न करना कोई सहज कार्य नहीं। लेकिन जो इसे तोड़ देते हैं फिर [illegible]

लाज आँखों का अमूल्य आभूषण है किन्तु, उम्र के साथ [illegible] है

मायावती ने जब से दूसरी शादी रचा ली, मन में अब अपनी बहन के घर आने की हिम्मत नही जुटा पायी थी। शायद उसके मार्ग में सबसे बड़ी बाधा लाज थी।

वह जवान बेटी से नजरें किस प्रकार मिलायेगी? झूठी बात बोलकर . .? पर बड़ी बहन के समक्ष झूठा बहाना बनाने में वह अपने आपको असमर्थ पा रही थी।

सोचती थी वह–'क्या कहूँगी उससे? समाज में ज्यादा तो लोग बच्चों के लिए ही करते है। और सारा स्वार्थ तो पर्दे में ढका रहता है। मुझे तो बच्चे भी थे [illegible] .। क्या मैं पतिविहीन होकर अपनी जिन्दगी नहीं जी सकती थी? मन में उठते विचार को रोक नही सकती थी? अपने बच्चों के लिए तो लोग सर्वस्व न्योछावर कर देते हैं। पर मैं छोटे से स्वार्थ को भी तिलांजलि नहीं दे सकी? [illegible] मन की चंचलता लोग से जो न करावे. ..। क्षण-क्षण में उठते आवेग को....[illegible] में भटकते हुए मन को मैं रोक न सकी। क्षुद्र वासना ने मुझको अपने ही बच्चों के समक्ष कितना जलील बना दिया कि मैं उससे आँख भी नही मिला सकती।

बच्ची क्या सोचती होगी, मेरे बारे में? इन्सान तो क्या जानवर भी अपने बच्चे से स्नेह रखते है। पर मैं तो जानवर से भी नीचे गिर गई। ई तो मेरी बड़ी दीदी साक्षात देवी बनकर खड़ी हो गई, नही तो मेरी बच्ची किसी. ..काल के गाल में समा गयी होती।

दीदी क्या सोचती होगी? कितनी लाछना लगी होगी उस पर? आहत होकर वह कितनी छटपटायी होगी? सम्पन्न हो या विपन्न समाज के लोग किसे छोड़ते है? समय पर व्यंग्यवाणों की वर्षा कर ही देते हैं। न जाने मेरे मन में कैसी कामना जगी थी। मेरी मति क्यों भ्रष्ट हो गयी। इन्सान की क्षुद्रता उससे जो न करावे. ..।'

वासना की आँधी मन मे बाढ के वेग की तरह हलचल पैदा करती है, उसके आगे संबधो की बस्तियाँ कब उजड़ जाती हैं, पता ही नही चलता।

"मायावती ऽऽ... ।" –किसी ने उसे टोका।

सोचो में उलझी हुई वह चौंक पड़ी। तत्क्षण संयत होकर बोली–"चाची आप।"

"हाँ री ! बहुत दिनो के बाद देख रही हूँ। कहाँ छुप गयी थी?"

चाची भाग्य मनुष्य से जो न करावे

जा रहा हो रामभरी से मिलने?

"हाँ चाची!" –मायावती ने स्वीकारात्मक अदाज में सिर हिलाया–"मला दखन आयी थी, वहीं से पता चला... ।" "हाँ तुम्हारी बेटी भी आयी है, ससुराल से वापस। न जाने क्या हुआ है।" –अत्यधिक बुढापा आ जाने के कारण चाची बोलते हुए थरथरा रही थी।

मायावती उसके बाल की ओर देख रही थी, जो काले से अब सफेद हो चले थे। कमर सीधी करने के लिए वह लकुटी का सहारा ले रही थी।

मायावती आगे बढी। रामभरी के दरवाजे पर पहुँचकर वह रुक गई। रुक नहीं गई बल्कि जैसे पैर ही काम नहीं कर रहा था। असहनीय बोझ जैसे पैर में लिपटा हुआ हो ।

उसी क्षण दिखाई पडी– नलनी! शीघ्रता के साथ ऑगन से निकली, और पडोसी के घर की ओर बढ़ गई। उसकी दृष्टि पड़ी पर अपनी माँ को पहचान न सकी, वह।

मर्माहत हो उठी मायावती । अपनी बेटी भी उसे नही पहचान रही है।

'कैसे पहचानेगी? वह ठुमक-ठुमककर चलती थी, उसी समय मुझसे अलग हो गयी। बचपन की भोली छवि अभी भी उसके मुख से झाँक रही थी। निष्कलक! निष्कपट .।। लेकिन आँखों में असीम दुःख को समेटे हुए .। क्या मेरे दुःख की छाया मेरी बेटी पर भी पड गई? क्या उस दुःख देने मे मेरी ही सबसे बड़ी भूमिका नही है?

न जाने उस वक्त मेरे मन में कौन–सा भूत सवार हुआ था। वास्तव में मनुष्य के मन का पार पाना बड़ा कठिन है। कब किसके मन मे कौन–सा विचार उठता है और वर्षों पहले का विचार कब लुप्त हो जाता है। कहना बडा ही मुश्किल है।

दिल के अन्दर की गुत्थी को सुलझाना, अन्त:करण के गहरे गर्त मे डुबकी लगाना, स्वयं उस व्यक्ति के लिए असम्भव कार्य है।

जिन्दगी मे हँसना-रोना तो लगा ही रहता है। लेकिन कभी–कभी हँसते हुए इन्सान भी भीतर ही भीतर रोते रहते है।

इसी तरह रोते हुए व्यक्ति भी मन ही मन हँसते रहते हे। देखने वाले सोचते हैं, बेचारे दुखी हैं। पर ऐसा होता नही। वह तो मगरमच्छ के ऑसू की तरह. . ।

लेकिन एसा नाटक आखिर होता क्यो है? ओ, शायद इन्सान अन्दर से भयभीत रहते है।

उस दिन भी तो मैं बहुत रोयी थी। कैसे न रोती मैं . । जवानी में विधवा होना कितना बडा पाप है! असहनीय दुख. । सामने मे जब जवान पति की लाश को देखे तो कौन स्त्री धैर्य बाँध सकती है?

पर वह रोना कितना क्षणिक था। दुःख की छाया कितनी कम अवधि के लिए मेरे सिर पर रही। शायद पति के द्वारा दिये गए कष्ट के कारण यह असहनीय दुःख लुप्त होता गया।

आज भी तो मुझे वैसे ही याद है

दिवाली का दिन था–वह। शहर के किसी दुकानदार के घर की सफाई कर रहे थे, नलनी के बाप. ..। ईंट के छेद से काला सर्प निकला और डस लिया। सीढ़ी से गिरकर वे तुरन्त ही मौत की गोद में समा गये।

जब तक मेरे पास खबर पहुँची तब तक वे जा चुके थे, इस दुनिया से. ।

कुछ दिन तक मैं रोती कलपती रही। उनके द्वारा दिये गये, सुख के क्षण की याद आती रही. ..। पर उन्होंने ज्यादा तो मुझ सताया ही था। रोज-रोज रात का ताड़ी पीकर आना, गाली बकना, बच्चो को पीटना और मेरे साथ सिर्फ जानवरों-सा व्यवहार....।

कभी उसने प्यार की निगाह से न देखा मुझ... । उसके लिए तो मै सिर्फ इच्छापूर्ति का साधन मात्र थी। लाल-लाल आँखो से जब वे मुझे घूरते तो मै भयत्रस्त होकर दुबक जाती थी। और वे मेरे साथ बलात्कार का नंगा दृश्य दिखाने लगते। मैं क्या कर सकती थी? आखिर उसकी पत्नी थी: क्या कहते लोग मुझे....? बोलने से मेरी ही हँसी उड़ायी जाती। उसके समक्ष तो मैं एक मशीन बन गयी थी, बटन दबाओ और चालू कर दो।

परतंत्रता की बेड़ी में जकड़े हुए लोग भीतर से टूट जाते हैं, मर जाते हैं। इच्छा नाम की वस्तु उसके अन्दर में ही मर जाती है। और वह जिन्दा लाश की तरह दूसरों के इशारे पर चलने के लिए मजबूर हो जाते हैं।

यह एक ऐसी गुलामी थी, जिसके विरोध में आवाज उठाना भी लाज से भरी हुई बात थी। आखिर क्या कहते लोग ?

मैं सोच रही थी–कुछ समय बीतने के बाद वे राह पर आ जाएँगे। उम्र भी तो एक शिक्षक की तरह है, जिससे लोगों को भलाई बुराई का ज्ञान होता है। पर यहाँ तो 'कम्बल होय न उजला, नौ मन साबुन धोय।' चरितार्थवाली बात हो गयी।

जिस मार्ग पर वे बढ़े, बढ़ते ही गये। दो-दो बच्चे होने के बाद भी वे नहीं सम्हले। घृणा-सी होने लगी, जिन्दगी से.. .। आखिर कैसे न हो? वही खाना, वैसे ही पहनना, वही दिनचर्या। कोई रद्दोबदल नहीं, परिवर्तन नहीं। एक निरसता सी छाती जा रही थी।

कभी नहीं जान पायी कि रात को पति के संयोग का क्षण कैसे बीत रहा है। बल्कि भूखे भेड़ियों की तरह वे आते, नोचते, खसोटते .। बेदर्द होकर! बचने के असफल प्रयास में लहु-लुहान हो जाती मैं. ..। फिर व्यथा से टीसभरी रात कब कट जाती, पता नहीं चलता। सवेरे वही दिनचर्या.. .।

ऐसे में अगर औरत विधवा हो जाय तो स्वतः उसके दुःख का अनुमान लगाया जा सकता है। फिर भी एक आशंका थी, जिन्दगी चलाने की, बच्चों के परवरिश की....।

मैं रो रही थी, उस कारण से। लेकिन लोग कह रहे थे बेचारी भरी जवानी में बेवा हो गयी "

समय का हृदय बहुत ही विशाल होता है। वह अपने अन्दर दुःख-सुख राग-कष्ट जिन्दगी में उठने वाली आँधी-शांति, प्रचंड गर्मी और बसंती शीतल वायु सब कुछ को समेट लेता है। फिर निरन्तर अपनी गति से आगे बढ़ने लगता है।

कुछ दिनों के बाद सब कुछ सामान्य हो चला। पर मेरे अन्दर में प्रेम की भूख वैसे ही जगी रही। चिलचिलाती धूप में अगर व्यक्ति प्यासा हो तो सिर्फ छाया से ही उसे संतुष्टि नहीं मिल सकती। उसे तो हिममिश्रित जल चाहिए। जिसे पीकर वह अपनी आत्मा को सुख दे सके।

उन्हीं दिनों मेरी ओर आकर्षित हुए, ललित. । उसका घर मेरे पड़ोस में था। ग्रामीण रिश्ते में वह मुझे भाभी कहकर बुलाते। बेचारे की पत्नी द्विरागमन के बाद ही इस दुनिया से चल बसी थी।

हम दोनों प्रेम के गाढ़े आलिंगन में कब बद्ध हो गये, पता भी नहीं चला। प्यास से व्याकुल व्यक्ति यह नहीं सोचता कि पानी किस घाट का है, स्वच्छ है या अस्वच्छ... । उसे तो पहले प्यास मिटाने की फिक्र लगी रहती है।

खैर, ललित के साथ जुड़ जाने से मेरी एक चिन्ता मिट गयी। मेरे पेट में जो दो मास का बच्चा पल रहा था, उस पर परदा पड़ गया। एक बाप इस दुनिया से चल बसे तो दूसरा साया देने के लिए तैयार हो गये। नहीं तो कुछ दिनों के बाद जब बातें खुलतीं तो सामाजिक व्यंग्य का सामना करना ही पड़ता।

किन्तु स्त्री-पुरुष के बीच इस तरह के स्वतंत्र सम्बन्ध को समाज ने कब स्वीकारा है? इन सबकी नजरों में तो यह अवैध बात थी। पुरानी संकीर्णताओं से ग्रसित....। लोगों के स्वरों में व्यंग्य भरने लगा। पहले तो नजरों से. . । फिर बात-बात में बाण चलने लगे।

पहले से ही जख्मी आत्मा कितनी चोट सह सकती थी। आघात पर आघात .। आकुल-व्याकुल हो उठी थी, मैं....।

अब तो कदम इतने आगे बढ़ गये थे, जहाँ से लौटना, मृत्यु को न्योता देने के बराबर था। कितनी विवश हो गयी थी, मैं . । अंततः इस परिचित समाज से भाग जाने में ही अपनी भलाई समझी। बेहतर लगा मुझे वहाँ से चले जाना, जहाँ पूरी तरह अनजान होकर हम दोनों शेष दिन काट सकें। पर इस मार्ग में सबसे बड़ी बाधा मेरी दूधमुँही बच्ची थी। मरता क्या न करता. ..।

अंत में, मैंने माँ की ममतामयी डोर को भी काट दिया। बहाना बनाकर उस बच्ची को अपनी बड़ी दीदी रामेसरी के घर छोड़ दिया। फिर समाज के सारे स्नेह और मोह को भूलकर भाग चली। पर यह भागना तो समाज की नजरों में. । अपनी नजरों से तो मैं चल पड़ी थी, अनबूझे, अनजाने जिन्दगी की डगर पर .. । जहाँ मेरी कल्पनाओं का स्वर्ग था जहाँ थके हारे मन के लिए विश्राम स्थल था

जीवन भर बटोरे दुःखरूपी मैल को मैं वहाँ जाकर सुख के सागर में डुबा

देना चाहती थी। पर मन के कल्पित मल्हार मे विचरने का मौका क्या सबको मिलता है? कुछ तो मंजिल तक जाने के पूर्व ही रात की अंधी गुफा में भटक कर रह जाते है। कितने की सोच ही भ्रम से भरा हुआ होता है। मात्र सुख की लालसा करने वाले शायद जीवन को समझ नहीं पाते।

जीवन है तो सुख और दुःख, अन्धेरे और प्रकाश की तरह लगा ही रहेगा।

तीन-चार वर्षों तक मैं कहाँ-कहाँ भटकती रही । पूरी तरह याद भी नहीं है, वे बातें .. । ललित को कोई ऐसी नौकरी नहीं मिल रही थी, जिसमें हम दोनों का अच्छे ढंग से गुजर-बसर हो सकती। उन दिनों की याद आते ही मन सिहर उठता है। कई बार किस तरह जलील होना पड़ा था हम दोनों को . ।

उफ... पता नहीं कैसे जीएगी-नारी! किसी भी नई जगह पर, जहाँ उसका कोई अपना न हो, सब के सब बाज की नजरों से घूरने लगते हैं। कई बार तो मैं बच गई नहीं तो मेरा अपहरण हो जाता। सौभाग्य से ललित की बाहों में इतनी ताकत थी, जिसके बदौलत मैं बचती रही।

अंत में भटकते-भटकते सहारा मिल ही गया। दिल्ली आकर मैं पूरी तरह बस गयी। लोहे के कारखाना में ललित को काम मिल गया।

ग्यारह-बारह साल का समय कब कट गया, पता न चला। नये वस्त्र, नव साज श्रृंगार, नई उमंग के साथ दिन बीतने लगे। नई सखी सहेलियों से सम्बन्ध प्रगाढ होता गया। ललित दिन भर काम करता और शाम को लौटता। मैं पूरे दिन आजाद चिरई की तरह उड़ती फिरती।

वर्षों से प्यासे मन. . रात भर स्नेह के सागर में डुबकी लगाते रहते। पुरानी जिन्दगी के वे दुखद दिन धीरे-धीरे मानसपटल से हटते जा रहे थे।

इसी बीच हम दोनों के प्यार में एक फूल खिला। पर वह असमय मे ही मुरझा गया, काल कवलित हो गया।

मैं रोग-व्याधि से ग्रसित रहने लगी। ललित का मन भी उच्चाट-सा रहने लगा।

उन्हीं दिनों कारखाने में एक घटना घटी, जिसमे ललित एक हाथ गवाँ बैठा। फिर तो दोनों को दुःख ही दुःख....।

कुछ निकट के लोगो ने धैर्य बन्धाया। और हमें गाँव की ओर जाने का ही निर्देश दिया।

अंत में हम दोनों ने भी यही निर्णय लिया। ऐसा सोचकर कि यह बारह वर्ष का समय हम दोनों के लिए स्वर्ग था। पर भाग्य मे तो नरक का दु.ख लिखा है।

गाँव वापस आकर हम दोनों ने देखा, जहाँ डीह पर मेरा घर था, वहाँ मात्र खण्डहर सा रह गया था। लम्बी-लम्बी घास उगी हुई थी। बाँस और लकड़ी के पड़े हुए टुकड़े अभी-भी पिछली घटना का चित्र उपस्थित कर रहे थ।

बच्चे युवा हो चले थे सब अजनबी निगाहों से देख रहे थे जो पहचानते थ

उनम से कुछ की आँखों में दर्द ... तथा कुछ लोगों के होंठो पर व्यग्यमिश्रित हँसी की रखा थी।

पर जिस हमने अपनी व्यथा सुनाई, वे सब हमदर्द बनते चले गये। उजड़ा घर फिर से आबाद हो गया। अपग ललित तो काम पर जा नहीं रहा था। मेरे ऊपर ही कार्य का सारा भार आ पड़ा, खैर, किसी तरह चलने लगी, नीरसताभरी जिन्दगी ...।

दुःख के पौधे को बोने के समय ही सोचना चाहिए कि यह भविष्य मे निश्चय ही विकसित होकर फलेगा, फूलेगा ...। पर आवेग में कौन सोचता है?

उन्ही दिनो रामस्री के विषय मे पता चला। नलनी की व्यथा की भी जानकारी मिली। पर लाज के कारण कुछ दिनो तक मिलने की उत्कठा को दबाती रही। अन्ततः सतान का मोह ...।

आखिर में लाज के पर्दे तार-तार होते चले गये।

"मायावती! कब आयी तू?"

वर्षों पुरानी चिर परिचित आवाज से वह चौंक पड़ी।

यादों के लोक मे विचरते मन यथार्थ की भूमि से टकराकर चमत्कृत हो उठा। कपोल पर फैले आँसुओं की धारा को पोछ लिया, उसने....। फिर अवरुद्ध कठ से वह बोली- "हाँ दीदी! मैं ही हूँ।"

नजरें उठाया तो रामस्री की आँखों में हजारो प्रश्न दिखाई पड़े। आखिर झूठ का सहारा लिये बिना कैसे इतने प्रश्नों का जवाब दे पाती .. मायावती....?

❖ ❖ ❖

जब से मायावती आयी, तब से नलनी आँगन में बहुत कम टिक पाती थी। जो भी कोई जरूरी कार्य होता, उसे पूरा कर वह शीघ्रता से निकल जाती थी।

मायावती सब कुछ देख रही थी। और सोच रही थी। 'आखिर इसमें कसूर किसका है? जानती हूँ, मेरी बेटी मुझसे नाखुश है। बोलना नहीं चाहती, मिलना नही चाहती।

मानती हूँ, मैं दोषी हूँ पर मैं भी कितनी विवश थी। क्या मेरी विवशता को नलनी जान सकेगी? वह तो यही सोचती होगी कि अपनी इच्छित कामनाओ की पूर्ति के लिए ही मैं ऐसी हो गयी।

पता नहीं जिन्दगी में कितने थपेड़ों को और सहना पड़ेगा। दुःख की कितनी बौछारे पड़नी अभी बाकी है।

एक बार जिस व्यक्ति को अत्यधिक कष्ट होता है तो वह सोच लेता है कि आगे सुख के फूल ही बरसेंगे। पर उसे कहाँ पता रहता है कि उसके हिस्से के बड़े-बड़े कष्ट अभी भी पड़े हुए हैं, जिसे मात्र उसी को भोगना है।

जीवन की मंजिल इतनी निकट भी तो नहीं होती कि दौड कर उस पर पहुँच

जाय। जिन्दगी की गाडी कब, कहाँ, किस वक्त रुकेगी, इसे जानना क्या सहज है?

खैर, कुछ भी हो, यह दोष तो मेरे माथे ही लगेगा। आखिर मैंने ही तो साँपिन की तरह बच्ची को जन्म देकर छोड़ दिया था।

नलनी को जो माँ का स्नेह मिलना चाहिए, उसे तो मैंने ही छीना है। इसलिए मुझे ही पहले बुलाना होगा। उसे बताना पडेगा, अपनी विवशता.. । कहीं ऐसा न हो कि मेरी तरह ओ भी....।

पति के घर से भाग आयी है–वह! यह कोई अच्छा कर्म नही है समझाना होगा उसे. .। अभी वक्त है। सम्बन्ध टूटने से पहले कोशिश करनी चाहिए। अगर बंधन टूट गया तो फिर गया। टूटे हुए धागे को जोडने पर भी गाँठ पड़ ही जाती है।

मैं जानती हूँ, वह मेरे साथ नहीं जाएगी। और मैं भी बार-बार यहाँ आ न सकूँगी। अच्छा होगा कि वक्त रहते अभी ही इस बात को सँभाल लिया जाय।

यौवनावस्था में पति-पत्नी के बीच दरार पडने का मतलब होता है, भविष्य में दु:ख के बादल का घिर जाना. ..। दोनो के बीच तो विश्वास का ही संबल होता है। विश्वास का उठ जाना, सम्बन्ध टूटने के बराबर होता है।

पर नलनी के मुख की ओर देखते ही जैसे सब कुछ भूल जाती हूँ। उसके चेहरे की घृणा से मै ग्रस्त हो जाती हूँ, खैर; साहस तो जुटाना ही पडेगा।'

मायावती अपने घर जाने के लिए तैयार होने लगी।

"दीदी! अब मै चलूँगी।" –उसने उठते हुए रामेसरी से कहा। "धूप तेज है। आज रुक जाओ, दो-चार दिन बाद ही जाना।"

मायावती समीप आकर बोली–"नहीं दीदी! वे, अकेले होंगे। बहुत कष्ट होता होगा। आखिर लूल्हा है न.. ..।"

कहती हुई रामेसरी आँगन से बाहर निकल गयी।

सहसा नलनी दिखाई पड़ी अभी आँगन में कोई नहीं था। कुछ कहने से पूर्व ही मायावती के हृदय की धडकन तेज हो गयी। जैसे चोरी करने से पूर्व... । फिर भी वह हिम्मत बाँधकर कोमलवाणी मे बोली–"बेटी ऽऽ ..।"

कोई उत्तर नही मिला। मायावती की आवाज में तेजी आ गई "नलनी! इधर सुनो।"

मुड गई, नलनी! शनैः पाँव बढ़ाती हुई वह समीप आकर रुकी। पर अपनी माँ को नहीं देख रही थी, उसकी नजरे नीचे की भूमि पर गड़ी हुई थीं।

मायावती ने उसके मुख की ओर देखा चेहरे से खिन्नता झलक रही थी, और आँखो से उदासीनता टपक रही थी, पर होंठ कसे हुए थे।

निमिषभर की चुप्पी जैसे उसे डसने लगी थी.. .। मायावती ने सोचा–'उसे ही समझदारी से बात बोलनी होगी।' उसके मुख से शांत वाणी निकली–"बेटी तुम जिधर बढ रही हो उधर सिर्फ दु:ख है अन्धेरा है अभी वक्त है लौट आओ

मेरी बात मान लो। अभी तुम नासमझ हो। जिस दिन समझदारी आएगी, उस दिन पछताना पड़ेगा। दुःख के सिवा कुछ न मिलेगा तब....।"

"अभी बढूँगी तो व्यथा ही मिलेगी। क्यों न आगे बढ़कर देख लूँ।"

झुँझला उठी मायावती–"बेकार की बातें मत करो। आखिर अपने समाज में नारी का महत्त्व ही कितना है? बिना पुरुष के उसकी क्या गिनती है? समाज बहुत पीछे है–बेटी! उसकी मर्यादा में चलना सीखो। समाज की मर्यादा को तोड़ना चाहोगी तो स्वयं टूट जाओगी।" "मैंने कहाँ तोड़ने की कोशिश की? इसे तोड़ने का प्रयास तो पुरुष ने ही किया। मैं स्वयं भाग कर तो नहीं आयी, बल्कि. .भगा दी गयी। उसने कहा–'मुझसे तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं, निकल जाओ मेरे घर से।' ऊपर से मार पड़ी। फिर मैं किस मुँह से वापस जाऊँ? क्या भिखारिन से भी मेरी स्थिति गई गुजरी है? मैं सिर्फ उसकी दासी नहीं। एक स्त्री हूँ। मेरा भी कुछ हक है उस पर. . ।"

"बेटी! तेरी बात को मैं मानती हूँ। पर समाज को बनाने वाले पुरुष वर्ग ने नारी के अधिकार को कितना तुच्छ बना दिया है। अगर कोई विद्रोही नारी सिर उठाती है, तो उसे किस तरह कुचल दिया जाता है, जानती हूँ मैं .।"

"तो इसका मतलब अत्याचार को सहती रहे–नारी? ऐसा तो मैं नहीं कर सकती।"

"सहना पड़ेगा–बेटी! नारी तो पुरुष के द्वारा शोषित होती ही रहेगी। मायके में रहे तो पिता और भाई के द्वारा ससुराल में रहे तो पति और श्वसुर के द्वारा कहने के लिए तो अर्द्धांगिनी होती है–नारी। पर कौन ऐसा सहृदय पुरुष है, जो नारी के अधिकार का हनन नहीं करता?"

"मैं वैसे पुरुष की तलाश करूँगी।"

"बेटी! मेरा कहा मान लो। नहीं तो जिन्दगी टूट कर बिखर जाएगी।"

तुम भी तो सिर्फ दूसरे को उपदेश देने के काबिल हो। क्या माँ का यही फर्ज होता है?"

"गड़े मुर्दे को उखाड़ने से कोई फायदा नहीं है–बेटी। उसमें से मात्र दुर्गन्ध निकलती है। मैंने जो भी किया, वह मेरी विवशता थी। पर तुम्हारे साथ वैसी बात नहीं है।"

हँस पड़ी नलनी....। उसकी हँसी में व्यंग्य था।

आहत हो गयी–मायावती.....।

❖ ❖ ❖

ताप में दग्ध धरा आकुल व्याकुल हो उठी थी। प्यासी वियोगिनी बनकर वह नभ की ओर देख रही थी उसकी तृषित आँखें अपने प्रियतम मेघ को खोज रही थी

उष्ण पवन जैसे हृदय का दुःख और उच्छ्वास बनकर निकल रहा था। अत्यधिक दु.ख के कारण वह कातर हो चली थी। नदी नाली सूख गई थी। जैसे नयनों के नीर का उद्गम ही समाप्त हो चला हो। पर परदेशी प्रियतम न जाने किस नव प्रिया की बाँहों में बद्ध होकर पूर्व प्रेम को भुला दिया था।

पुरुषों का मन तो स्वभाव से ही चंचल होता है। भ्रमर एक पुष्प पर अपना सारा प्रणय लुटाना नही चाहता, वह तो चाहता है, अधिक से अधिक पुष्पों का प्रणय-स्पर्श....। पर चंचलता का जन्म भी शांति के उद्गम से ही होता है। और अवसान भी शांति के गोद में.. .। आखिर कनक रखा-सी चमकती बिजली कब तक टिक पाती है।

यौवन और चचलमन कितना क्षणिक होता है। सावन की उफनती नदी जब धरती पर उतरती है तो उछलती, कूदती आगे बढ़ती जाती है। पर समुद्र मे जाते ही वह कितना शात हो जाती है। निश्चल....स्थिर....।

काले सघन मेघ लटकने लगे थे, नभ से धरती की ओर....। भूले बिसरे प्रियतमा की याद आ आयी थी शायद उसे . .। वे सदेशों की बारिश करके धरती को भिगोने के लिए वायुरथ पर सवार शीघ्रता के साथ चले आ रहे थे। उसे देखते ही धरती पुलकित हो उठी थी। उसका रोम-रोम आनंद से रोमांचित हो उठा था।

खुशी के कारण मेघ गर्जन-तर्जन करने लगे थे। बिजली की कड़क और मेघों की गर्जना से चौक पड़ी थी-नलनी।

बाहर झाँक कर देखने लगी, वह। बूँद-बूँद टपकने लगी थी। धीरे धीरे बौछारे तेज होने लगी। साथ ही साँझ के काले पट पसरने लगे थे।

नलनी को याद आयी। उसकी काली चुनरी और साड़ी भीग रही होगी। बूँदो की चोट सहते हुए वह दरवाजे की ओर दौड़ पड़ी।

सहसा उसे अपनी भाभी की खिलखिलाहट सुनाई पड़ी। वह चकित हो उठी। अनायास ही उसके मुँह म आवाज निकली-''शायद, आज भाभी बहुत खुश है, तब न अकेले में हँस रही है। एँ.. .। पर लगता तो है, किसी के साथ बात कर रही है।''

मन मे शंकाओं की घटा उमड़ने लगी। उसने भीगती हुई साड़ी को छोड़ दिया। उसके कदम पिछवाड़े की ओर बढ़ गए।

उसने छिपकर जो देखा तो नेत्र विस्फारित हो उठे। आँखों और कानों पर जैसे विश्वास नही हो रहा था। वह विचारने लगी-'आखिर भैया ने इसके लिए क्या नहीं किया, फिर भी.. .। तब न औरत जात पर विश्वास नहीं किया जाता है। कुछ दिनों के लिए बाहर गये तो देखो....। किसी को भी ऐसी आशा होगी। जरा सुनूँ, क्या सब बातें हो रही है।

उसके कान सजग हो उठे।

''भाभी। तुम कितनी सुन्दर हो उसमें भी तुम्हारी कमर मत पूछो

कहानी की आवाज उभरी–"और कितनी दिल्लगी करोगे। तुम्हे पैसे की जरूरत थी, मैने किसी तरह बन्दोबस्त कर दिया। लो गिन लो, पूरे दो सौ हैं।"

मेघ गरज उठे थे। भाभी की आवाज उभरी–"अरे इस तरह लिपटते क्यो हो। कलमुँही, ऑगन में ही है। कही देख लिया हो तो मै कहीं की नहीं रहूँगी।"

"वह क्या देखेगी, भाभी। ऊ तो स्वय अपने भतार को छोड़कर भाग आयी है। तुमको डर लगता है तो चलो न पिछवाड़े की टूटी झोपडी में बैठेंगे। वही बातें भी होंगी ओर....।"

पानी में भीगती नलनी क्रोध से उफनने लगी थी। मुँह मे क्रोधयुक्त मद्धिम स्वर निकल रहा था–"ई लफगा जगदीशवा... । मै तो इसकी रग-रग को पहचानती हूँ। न जाने, भाभी कैसे इसकी चाल मे फॅस गयी। और फिर हमारे बारे मे बोलता है, ई कुंजीलाल का बेटा। मैं तो इसके तीन पुरखे को जानती हूँ। छिनाल कही का . । पर नही, इसे मैं वैसा नहीं करने दूँगी।"

दृढ़ता की कई लकीरे नलनी के चेहरे पर उग आयी थीं।

सोचने लगी वह–'तब न भाभी चुरा कर चावल बेच रही थी। मै भी तो सोच रही थी, आखिर क्या करेगी रुपया। इसने तो इस कलमुँहे को देने के लिए चोरी की थी। है भी यह छिनाल ऐसा ही। वर्ष भर पूर्व तो मुझ भी बदनाम करके छोड़ दिया था, इसने। बात हुई कुछ न, और तिल को ताड बना कर उड़ा दिया, पूरे समाज में। यह तो मेरी मौसी ही इतना विश्वास करती थी, मुझ पर.. । नहीं तो, मैं कही की नहीं रहती।

अब कान्ती भाभी फॅस गयी हैं, इसके परपच जाल मे। बाप भी इसका ऐसा है–कुँजिया, जो ब्याह ही नहीं करता। करेगा कैसे, उसको तो अपने बच्चा पैदा करने से फुर्सत नहीं है। आखिर बहू आ जाएगी घर मे तो उसको भी दिक्कत... ।

बेशर्म, जैसा बाप वैसा बेटा ..। इधर, भाभी क्या सोचती है। भैया तो महीना में एक बार घर आ ही जाते है। और जब आते है तो भाभी का हर पल ख्याल रखते है। क्या खाएगी, क्या पहनेगी।

उसके साथ ऐसा विश्वासघात .. । जिसे फटकार देते कभी नही सुना हमने। कमी यही है कि हमेशा भाभी के साथ नहीं रहते है वे.. ।

आखिर रहेंगे कैसे? धधा भी तो कुछ करना है। दूर-दराज देहात स कम कीमत पर अनाज खरीद कर लाते हैं, और शहर जाकर बेचते हैं। उसी से तो कुछ बचता है, जिससे परिवार चलाता है नहीं तो इस खेती से क्या सम्भव है। किसी साल बाढ़ तो किसी साल सूखा .. ।

हाँ एक कमी देख रही हूँ मैं। अभी तक भाभी माँ नहीं बनी है। कहीं इस बात से तो पर उसकी उम्र ही कितनी हुई है यही तो तीन चार साल पहले गौना करवा कर लाय हैं भैया इतन ही दिन में वह निराशाओं से घिर गयी?

इस समाज में तो कितने आदमियों की आशा बुढ़ापे में पूरी हुई है। फिर भैया भाभी तो अभी पूरी तरह जवान है। फिर भी. ...।

भैया को कहीं कान्ती भाभी नामर्द तो नहीं समझती हैं। न-न, ऐसा सोचना भ्रम मे है भाभी। भाई साहब तो पूरी तरह स्वस्थ हैं। फिर क्या सोचकर ऐसा कर रही है--भाभी? ओह, वास्तव में औरत एक अबूझ पहेली है। ऐसी पहेली जिसे वह स्वय भी नही समझती है। और यौवनावस्था का चंचल मन . । उफनती बाढ के वेग की तरह ...। कब किस किनारे को ले डूबेगी, किस ओर चंचल हो उठेगी कहना कितना असहज है।

खैर, अभी भाभी कर्त्तव्य से विचलित हो रही है। वह जिस पाप के पौध की बोआई कर रही है, वह जब अंकुरित होकर बढ़ेगा तो निश्चय ही नासूर से भी अधिक कष्टकर होगा। ये तो बाद की बात है अभी तो मेरा भी कुछ कर्त्तव्य है। मैं इस परिवार की हूँ। बदराह की ओर बढ़ते उसके कदम को रोकना मेरा फर्ज है। पर कही इस पाप के कीचड़ का कुछ छींटा मेरे ऊपर भी न पड़े। खैर, कुछ भी हो जाय भैया नही है पर मैं तो हूँ। मै अपने सामने ये सब होते कैसे देखती रहूँ? पर क्या रोकने मे रुकेगी भाभी? खैर, मैं कोशिश तो जरूर करूँगी। भाभी समझदार हैं। कहीं बात समझ गयी तो जिन्दगी की नैया डूबते- डूबते बच जाएगी। मैं भी समझूँगी कोई सुकर्म मुझसे भी हुआ।'

मेघ गर्जना के साथ बारिश तेज हो गयी थी। चौंक पड़ी नगीनो सोचने का क्रम ततक्षण ही टूट चला। ऊँची आवाज में बोली वह--"भाभी ऽऽ । आँगन मे सब कुछ भीग रहा है। किधर हो तुम?"

पिछवाड़े की झोपड़ी मे चौकन्ना हो गयी कान्ती ...। वासना के उठते वेग एकाएक विछिन्न हो गये.. .। जैसे समुद्री तूफान उठते-उठते बीच में ही शांत हो गया हो।

कान्ती के स्वेद से सराबोर चेहरे पर घृणा की कई लकीरें उग आयी। जैसे मिठाई खाते वक्त स्वाद ग्रंथि पर बहुत ही द्रव्य उड़ेल दिया हो। उसके मुँह से अनायास ही आवाज निकल पड़ी--"कलमुँही कहाँ से टपक पड़ी।"

"चिल्लाने दो, छिनाल को।" --जगदीश का स्वर उभरा।

पर उसकी बात सुनने के लिए कान्ती रुकी नही। तेजी के साथ वह आँगन की ओर चल पडी थी।

बूँदों की चोट से भूमि की ऊपरी परत पूरी तरह भींग चली थी

❖ ❖ •

चंद लम्हे पहले ही तो वह चावल लाने घर के भीतर गयी थी। पर बोरी मे थोड़ा-सा चावल बचा हुआ था। उसका माथा ठनक गया। मन भ्रमजाल मे फँस गया था।

वह विचार करने लगी। 'इतने दिनों से बहू घर में है। अगर उसे चुराने की आदत रहती तो कब न दृष्टि में आ गयी रहती। मेरा बेटा सोमनाथ तो आता ही रहता है। बहू की कौन-सी अभिलाषा वे पूरी नही करते होंगे, जो छिपाकर बेचेगी। फिर वह चुराएगी किसका? सब कुछ तो उसी का है। कौन ऐसी मूरख स्त्री होगी जो अपनी ही सम्पत्ति चुराएगी।

जब उसकी सारी आकांक्षा पूरी होती ही रहती है, तो वह नहीं चुराएगी। कहीं नलनी का तो यह कुकर्म नही है। पर उसे तो मैं बचपन मे ही जानती हूँ।

स्वभाव तो बचपन में ही बिगडता और बनता है। युवा होने के बाद उसमे परिवर्तन होना असहज है। इन दोनो के अलावे कोई है भी नही।

कल ही तो देखी थी मै, बोरी भर चावल । फिर आज ही क्या हो गया? हो सकता है नलनी को ही कोई जरूरी कार्य हो गया हो। उस पर विश्वास करना उतनी अच्छी बात नहीं है।

आखिर पति को त्याग कर चली आयी है-वह। पति परित्यक्ता नारी । उसके मन में कब कितना परिवर्तन हो जाय क्या पता।

पूछ लेने मे ही भलाई है। नही तो बेटे सोमनाथ को मै क्या जवाब दूँगी? हो सकता है-वह मुझपर ही अविश्वास करने लगे। जमाना खराब चल रहा है। माँ बेटे पर भी विश्वास नही करते। पति-पत्नी के बीच मे भी विश्वास उठ गया है।

अच्छा होगा कि उसके आने से पूर्व ही सारी बात जान लूँ। छोटे-छोटे घाव भी उपयुक्त औषधि के अभाव मे पूरे शरीर को विषाक्त बना देते है।

रामेसरी घूमकर नलनी की ओर देखने लगी। नलनी आँगन में सब्जी काट रही थी।

वह मौन साधे सोच रही थी-'मौसी को सारी बाते बता देने में ही भलाई है। सिर्फ चावल चुराने की बात रहती तो मैं निगल जाती। पर यहाँ तो.. । ऐसे मे तो पारिवारिक स्थिति ही बिगड़ जाएगी।

इतना बड़ा विश्वासघात, अपने मन मे छुपा लूँ-मैं। बाद मे जो सारी बाते खुलेगी तो सब मुझे ही कहेंगे। और अभी ही क्या मैं इतने बड़े पाप की गठरी का बोझ ढो सकूँगी?

अन्दर ही अन्दर कचोटता रहेगा, मेरा मन. ..। और कहीं ऐसा न हो कि मेरे ऊपर ही किसी बात का दोषारोपण हो जाय। इससे क्या? भविष्य के भय से भीरु बन जाना अच्छी बात नही होगी। जो होगा-देखा जाएगा।' वह संकल्प विकल्प मे डूबी हुई थी

तभी रामेसरी की सख्त उभरी नलनी ऽऽऽ

"आ रही हूँ।"

कहती हुई वह तेजी से उठी, और रामेसरी के सम्मुख जाकर खड़ी हो गयी।

"मैं पूछती हूँ, इसमे से चावल किसने चुराया?" –रामेसरी ने फटकार भरे स्वर में पूछा।

क्षण मात्र के लिए नलनी के मन में उथल-पुथल सी मच गयी। वह असंयत हो गयी थी। बात कहाँ से शुरू करूँ।

"मै जो पूछती हूँ–उसका जवाब क्यों नहीं देती।" –रामेसरी की आवाज मे तीव्रता आती गयी। उसे ऐसा लगा, जैसे चोरी नलनी ने ही की है। इसलिए वह चुप है।

"मौसी मुझे कहते हुए लाज आती है।"

"बेशर्म कही की, चुराने समय में लाज नही आयी?"

"मैंने नही चुराया।"

"तब क्या, सिर्फ चावल चुराने के लिये बाहर से चोर आया था? मुझे सिखाती है।"

"बाहर से चोर नहीं आया था–मौसी।"

"तो क्या मैंने चुराया? अपने ही घर मे डाका डाला मैंने?"

"नहीं मौसी, ऐसी बात नहीं है, भाभी ने ..।"

फिर नलनी ने वह सारी कथा कह डाली। जिसे उसने अपनी आँखों से देखा था।

रामेसरी विस्मय मे डूब गयी थी। मुँह से बोल नहीं फूट रहा था। वह निर्निमेष ऊपर की ओर देख रही थी। जहाँ कई मकड़ी के जाले लगे हुए थे। और उस जाले मे छोटे-छोटे कीट पतंगे फँसे हुए थे।

प्रणय का बीजांकुर कब हृदयस्थल मे पड़ जाता है, अनुकूल परिस्थिति पाकर शनैः शनैः पाद्प का रूप धारण करने लगता है, पता नहीं चलता।

इसका अभिज्ञान तब होता है जब हृदय एक दूसरे के प्रति आकर्षित होकर मिलन के लिए उत्कंठित हो जाता है।

उस परिस्थिति मे अभीष्ट इन्सान के नही मिलने पर व्यक्ति अंतर्दाह से विचलित-सा हो उठता है। कामनाओं के जहर से दग्ध हो उठता है–उसका मन. .।

नलनी से मिलने के लिए संजय बेचैन था, कई दिनों से... । इसी बीच उसे पता चला कि वह मायके चली गयी है।

उसके साथ घटी सारी घटना की जानकारी मिल गयी। किसी आत्मीय व्यक्ति का कष्ट होते जान कर सहृदयजन आशंकित हो उठते हैं मन उधेड़बुन रूपी जाल में फँसकर शरविद्ध पक्षी की तरह छटपटाने लगता है

कई दिनों से संजय सोच रहा था, अपनी बहन की ससुराल जाने के विषय में . । आज अपने पिता जनेसर की सह पाकर वह चल पड़ा था।

धूप में तीव्रता थी। पसीने में तर-बतर हो चला था, उसका शरीर .. । सोचा उसने 'गाँव के निकट तो आ ही गया हूँ, थोड़ा सा सुस्ता लूँ। कोई ग्रामीण मिलेगा तो उससे हालचाल भी पूछ लूँगा।'

ऐसा सोच कर वह उस छोटे से तालाब की ओर बढ़ चला। जिसके कूल पर एक छोटा-सा कदम का पेड़ हवा के झोंकों के साथ झूम रहा था।

आशा के विपरीत उसे कोई न मिला। लम्बी उसाँस भरते हुए वह छाया तले बैठकर पसीना पोंछने लगा।

संजय की माँ बचपन में ही छोड़ चल बसी थी। उसके पिता जनेसर जवानी में ही विधुर हो गए थे। पत्नीविहीन होकर भी उसने अपने दोनों बच्चों की परवरिश की थी।

बड़ी लड़की की शादी हो गयी थी। बच्चे की माँ बनने वाली थी, वह। अब संजय की शादी कर देना वह अपना पहला कर्त्तव्य समझ रहा था। पर अभी तक ढंग की लड़की नहीं मिल पायी थी।

जनेसर दिनभर खेत पर मेहनत करता। उसके पास इतनी सामर्थ्य नहीं थी कि जन-मजदूर से काम कराता. . ।

संजय अपने मामा के घर जाकर भी खेतीबारी का काम देखता था। जिसके बदले में उसे कुछ धान गेहूँ, मिल जाया करता था। सिर्फ दो व्यक्तियों का छोटा-सा परिवार....। वर्ष भर में कुछ बचत ही हो जाती थी, जिससे वह हर साल एक दो कट्ठे खेत खरीद लिया करते थे।

किन्तु भोजन बनाने की समस्या उपस्थित हो जाती थी। पड़ोस की बुढ़िया काकी जो वैधव्य प्राप्त थी, कभी-कभार आकर खाना पका देती थी। पर जब वह नहीं आती तो जनेसर को स्वयं चूल्हा फूकना पड़ता था।

इसलिए वह चाहता था कि जितनी जल्दी हो सके संजय की शादी हो जाय। पर कोई न कोई अड़चनें आकर खड़ी हो जाती थी, और बात अधर में लटकी रह जाती।

संजय के हृदय में हलचल सी मचने लगी। जैसे किसी अलभ्य वस्तु की प्राप्ति होने ही वाली है।

नयनों की बेचैनी मिटने सी लगी। घंटों पूर्व की पिपासा शांत होने लगी। मुख पर सुख के सुमन खिल उठे। प्रसन्नता की अधिकता से मुँह से बोल नहीं फूट रहे थे। तत्क्षण उठकर खड़ा हुआ। और उसने सामने से आती हुई नलनी को हाथ से संकेत किया।

पर नलनी देख नहीं रही थी उसे। अंततः संजय के मुँह से कम्पन भरा स्वर उभरा " इधर सुनिये "

परिचित स्वर सुनकर नलनी विचारों के झंझावत को तोड़कर जैसे बाहर

निकली। संजय को देखते ही उसके मुरझाये चेहरे पर प्रसन्नता की किरणें चमक उठी।

पग की गति में तीव्रता-सी आने लगी। एक अव्यक्त आकर्षण सा उठने लगा-उसके दिल में... । जिसके वशीभूत होकर वह शीघ्रता के साथ संजय के समीप चली आयी थी।

कई पल तक एक दूसरे की नजरे बातें करती रहीं। अव्यक्त! मौनभाषा ।।

बीते सुख-दुःख की गाथा। आखिरकार नलनी की नजरें धरा की ओर झुक गयी थीं। साथ ही चक्षु से चंद बूँदे निकल पड़ीं। जो धरती में सहजता के साथ समाती चली गयी थी।

नलनी को पता नहीं था कि आखिर ये आँसू क्यों निकल पड़े। संजय कुछ बोलना चाहता था, पर कंठ अवरुद्ध-सा हो गया था, पता नहीं, क्यों.. .?

न जाने किस तरह के विचार उठ रहे थे, दोनों के अन्तर मन में....। कभी पीडा तो कभी उल्लास....! एक ऐसी टीस जिसमें आनन्द भी था और दुःख भी. । मन को मापने का कोई यंत्र नही बना। न जाने ये कैसा अथाह सागर है, कैसा सीमा विहीन विस्तार. ..। इसकी थाह कौन पावे? कितने तो किनारे पर ही डूबते-उतरते मृत्यु के काले पंजे में बद्ध हो जाते हैं।

नलनी ने बहुत देर के बाद सिर उठाया, कपोल पर आये अश्रु की बूँदों को पोछती हुई वह मन्द स्वर में बोली-''कब आये-आप?''

कंठ मे अटके थूक को निगल गया-सजय! फिर बोला-''अभी कुछ देर पहले ही तो आया हूँ। सोचा, यही थोडा आराम कर लूँ।''

नलनी कुछ न बोली। वह संजय के मुख को निहार रही थी।

''जब से आपके बारे में पूरी जानकारी मिली तब से बेचैन हूँ। सोचता हूँ, इस ससार में कैसे-कैसे लोग हैं, जो आपकी जैसी देवी पर भी शंका व्यक्त करते है।''

''हमारे भाग्य में शायद यही लिखा है।'' नलनी का कंठ पुनः आर्द्र हो चला था।

''मत रोइये। मैं जानता हूँ कि यह कष्ट आपको मेरे कारण हुआ। इसके लिए आप चाहे जो सजा दीजिए। मैं सहर्ष स्वीकार करूँगा।''

संजय की बातों में प्रतिबद्धता थी। और नलनी उसकी बातों को अपने मन के तराजू पर तौल रही थी। बोली वह-''मै दूसरों को क्या दोष दूँ, जब अपनों का ही मुझ पर भरोसा नही रहा। मन में आता है, आत्महत्या कर लूँ। इस कुंठित जीवन से छुटकारा तो मिले।''

कहते हुए संजय ने उसकी बाँह पकड़ ली, और समीप बैठा लिया। नलनी के नेत्र से झरझराकर आँसू निकल पड़े।

सजय ने सस्नेह उसके आँसू पोछ दिये। बोला वह-''क्या करूँ, मैं तो विवश हूँ। मुझे तो अधिकार भी नहीं कि आपके कष्ट को दूर कर सकूँ।''

नलनी के चेहरे पर करुणामिश्रित हँसी की रेखा खिंच गयी।

“सभी पुरुष तो एक जैसे ही होते हैं। संतोष देने का ढंग कुछ अलग-अलग होता है।”

“नहीं ऐसी बात नहीं है। कुछ पुरुष पाषाण से भी कठोर होते हैं तो कुछ पुष्प से कोमल....।”

कुछ पल तक नलनी चुपचाप सोचती रही, फिर बोली–“अगर अधिकार मिले तो आप क्या करेंगे?”

संजय की तेज आवाज उभरी–“मैं दिखा दूँगा-दुनियाँ को। और आपके दिल में भी पुरुष के प्रति जो नफरत है, उसे प्रेम में बदल दूँगा।”

नलनी के हृदय का प्रेम प्रसून खिलने लगा था, संजय की बातों की बसंती बयार से....।

दोनों अपने-अपने मन की गुत्थी को सुलझा रहे थे। एक तरफ निराशा की बदली को हटाकर आशा का सूर्य चमकने को आतुर था तो दूसरी ओर पूर्ण विश्वास के निर्मल नीर का प्रकाश....। एक के हृदय में सावन की अल्हड़ नदी लहरा रही थी, तो दूसरे के हृदय रूपी वृक्ष में कोमल किसलय फूट रहे थे। पर दोनों के हृदय में प्रेम का देवता जाग उठा था। एक को इच्छित वस्तु मिलने की खुशी थी तो दूसरे को अंधेरे में टिमटिमाती रोशनी का सहारा ...।

पर इन दोनों से अलग कान्ती की दौड़ धूप जारी थी। आज उसके मन की मुराद मिल गयी थी। जैसी बात की वह कई दिनों से तलाश में थी, ठीक उसी प्रकार की.. ।

वासना पूर्ति के उद्दाम प्रवाह में जब किसी प्रकार का व्यवधान उपस्थित होता है तो वासना के इच्छुक पूरी शक्ति लगाकर उसे हटा देना चाहते हैं। मिटा देना चाहते हैं। पर उससे ऐसा नहीं हो पाता तो वह चोट खाये चीता की तरह गुर्राने लगता है। अगर उसे उचित अवसर मिल जाय तो व्यवधान पहुँचाने वाले पर किसी भी समय आघात पहुँचा सकता है। आवेश में वह ये भी नहीं सोचता कि मैं मिटूँगा या रहूँगा।

नलनी के कहने पर जब से कान्ती के चरित्र पर दाग लगा था, वह कुपित होकर गुमसुम बैठी रहती थी। न खाती, न पीती, न अधिक बोलती थी।

फिर भी कई बार उसे रामेसरी के क्रोध का सामना करना पड़ता था। हमेशा डाँट-फटकार, प्रताड़णा....।

दुःख में डूबी हुई वह कोप भवन बैठी थी और सोच रही थी। ‘इन बातों की जड़ नलनी ही है। मेरे दाने पर पलती है, फिर भी मेरे ऊपर कितना बड़ा दोषा रोपण कर दिया। सास तो बिगड़ी हुई ही है। उसके बेटे आएँगे तो मैं क्या जवाब दूँगी?’

आज दोपहरी में जब वह तालाब की ओर निकली तो चौंक पड़ी। संजय और नलनी दोनों वृक्ष के तले उसे दिखाई पड़े। जैसे कई दिनों के भूखे शेर को

ही छोटा शावक मिल गया हो

वह दौडी हुई आँगन गई और अपनी सास को बुला लायी। समीप में ही छिपकर संजय और नलनी के क्रिया-कलाप को दिखाने लगी। साथ ही मनगढ़ंत कहानी बढ़ा-चढा कर सुनाती जा रही थी–कानी. . !

अपनी सास के मन में नलनी के प्रति जितनी घृणा भरनी चाहिए थी, उतनी भर दी थी, उसने... ।

पर इन बातों से अनभिज्ञ होकर नलनी और संजय प्रणय के प्रथम सोपान पर झूम रहे थे। मलयानिल के झोंकों में उन दोनों के मन-प्राण गदगद हो रहे थे। पराग संचित पुष्प पर भ्रमर घूमघूमकर रिझाने का गीत गा रहा था। पर पुष्प अपनी मर्यादा हेतु गुमसुम होकर खिलने को तैयार न था।

रामसरी के नेत्र पंकजपुष्प की तरह रक्ताभ हो गये थे। मन के भीतर आँधी सी उठ रही थी। वह तीव्रता के साथ उठी और घर की ओर चल पड़ी।

वहाँ चारो ओर सब्जी जलने की दुर्गन्ध व्याप्त थी।

नलनी शीघ्रता से बची हुई सब्जी को समेट-समटकर उठा रही थी। शायद चूल्हे पर से तरकारी की हाँडी उलट गयी थी।

रामसरी के आँगन में कदम रखते ही वाक्यबाण की वर्षा होने लगी।

"हाँ-हाँ झोंक दो चूल्हे में. . .। बाप कमा कर रख गया है न।"

उसकी बहू कान्ती ने बात में और जहर घोल दिया–"माँ जी! ध्यान तो कहीं और रहता है। और फिर सब्जी जलेगी क्यों नहीं। मुझे पता चला है कि आज कोई आये है, इसका अपना.. . .।"

नलनी के कुछ बोलने से पूर्व ही आघात पर आघात! वह भीतर ही भीतर बिलखने लगी। लगा जैसे नुकीले पत्थर का हजार बार उसके मर्म पर पड़ा हो। किन्तु उसे आश्चर्य हो रहा था कि दोनो सास बहू में इतनी जल्दी मेल-मिलाप कैसे सम्भव हुआ। चार दिनों से तो दोनो ने आपस में बातें करना भी बन्द कर दिया था। फिर दोनो मिलकर मुझ पर. . ।

आखिर कान्ती भाभी को मौसी ने माफ कैसे कर दिया? न डाँट, न फटकार, न उसे बात समझायी गयी....। कुछ न कुछ तो जरूर हुआ है।

नलनी ने पलटकर कान्ती की ओर निगाह उठायी। उसके मुख पर बदले की भावना छायी हुई थी।

कान्ती के होटों से व्यंग्यमिश्रित आवाज निकली–"जो अपने बेशर्म रहती है न, दूसरो पर ऐसे ही तोहमत लगाती है। आँखें तरेर कर कैसे देख रही है, छिनाल कहीं की....।"

सच्चे इन्सानों पर जब दोष लगाया जाता है तो वे तिलमिला उठते हैं। क्रोध की [illegible]कता से वे कुछ भी बोलने को तैयार हो जाते हैं।

क्रोध से फुफकारती हुई नलनी बोली–"मैं छिनाल हूँ? भाभी तुम कभी अपने भीतर झाँक कर देखी हो? तुम क्या हो? हुँह, आखिर सच्ची बात छिपी नही रहेगी।"

कान्ती अपनी सास की ओर मुड़ती हुई बोली–"माँ जी! देख रही हो ना, उस दिन तो ढिंढोरा पीटकर मेरी इज्जत को धूल में मिला ही दिया। आज फिर सुन रही हो न... ।"

नलनी के नेत्र मे आँसू आ गये थे, बोली वह–"तो क्या मैं उस दिन झूठ बोली थी? उस दिन तो....।"

रामेसरी का फटकार भरा स्वर उभरा–"चुप रहो लुच्ची! आज मै अपनी आँखों से तेरा सारा कुकर्म देख चुकी हूँ। मुझे सिखाओ मत. . ।"

"तो तुम भी मौसी....। मुझ पर विश्वास नही आता तुझे?"

विश्वास! दूसरी औरत रहती तो तुझे इतनी पिटाई करती जो अब तक तू भाग गई रहती।"

"मैंने क्या गलती की है–मौसी? क्यों मुझ पर झूठा तोहमत लगाती हो?"

आँखे नचाती हुई कान्ती बोली–"सब करम करके सती-सावित्री बनती है। घर पर नहीं, बाहर मे तालाब के निकट रास-रचाती है। जिससे सारे लोग देखें, और इस परिवार की नाक कट जाय।"

नलनी अपने को नही रोक सकी।

"चुप रहो भाभी! अभी तक मैं बहुत कुछ छिपा के रखी हूँ, अगर सारी बात खोल दूँ तो भैया तुझे रखेंगे भी नहीं।"

"अच्छा, वे तुझे नही रहने देगे कि मुझे? ये मत समझो कि वे कुछ नही जानते। दोपहर में ही सारी बातें जान गये हैं। कहीं गये हैं, आते ही होंगे। तब पता चलेगा। अपने बचने के लिए कैसे-कैसे जाल रचती है, वेश्या की बेटी कहीं की....।"

नलनी तन कर खड़ी हो गयी। अत्यधिक रोष से उसके होठ फड़कने लगे। मौसी कुछ कहती तो वह क्रोध को पी जाती। पर कान्ती के शब्दबाण से जैसे उसकी देह में थरथराहट आ गयी। बोली वह–"मुँह सम्हालकर बात करो–भाभी! नही तो मैं सब कुछ भूल जाऊँगी।

उसे क्रोध में आते देखकर कान्ती को जैसे खुशी मिल गयी। उसकी व्यंग्य में डूबी आवाज उभरी–"ऐ ऽऽ तो क्या करेगी तू? मुझे मारेगी? मेरे अन्न पर पल कर मुझे ही पीटोगी?"

"तुम सीमा को लाँघ रही हो–भाभी! ये सब कहने का तुझे कोई हक नहीं। तेरा अन्न खाती हूँ तो काम भी करती हूँ। सवेरे से साँझ तक.....।"

"काम करोगी तो जो मन में आएगा, वहीं करोगी? तब कह न दो खुलकर माँ को तेरे वे भैया दलाल बन जाएँगे "

चिल्ला उठी नलनी भाभी ऽऽऽ तुम इतनी बेशर्म हो जाओगी मुझे पता

नही था, एसी बात मुह से निकालते हुए लाज नही आती है। आगे मत बोलो।''

उसकी ओर शीघ्रता से बढ़ती हुई कान्ती बोली-''आगे बोलूँ तो तू क्या कर लेगी-मुझे?''

''क्या करूँगी, मैं पड़ोस के लोगों को बुलाकर तेरा सारा भंडा फोड़ दूँगी। कुकर्मी हो तुम और दोष मेरे माथे पर....।''

कान्ती ने झपटकर नलनी की बाँह पकड़ ली-''हाँ हाँ, मारो मुझे। भगा दो इस घर से. ..।'' -रोती हुई वह आगे बोली-'' माँ जी आज देख लो कि कैसी चुड़ैल को पाल पोसकर बड़ा किया आपने। जो आपकी बहू की ही दुर्दशा करने पर तुली हुई है।'' -कान्ती जोर-जोर से रोने लगी।

रामेसरी सरोष घर मे बाहर निकली। नागिन की तरह फुफकारती हुई.... वह नलनी के सिर की बेनी को झपटकर पकड़कर लिया, और कई चाँटा मुख पर जड़ दिये। फिर क्रोध मे डूबी उसकी आवाज उभरी-''निकल जाओ-मेरे घर से, बेहया..। कुकर्म करती हो और कहने पर उल्टे मेरी बहू को पीटती हो। मेरे घर में तुम्हारे लिए कोइ जगह नहीं है। फिर कभी मुँह दिखाने के लिए इधर मत आना।''

सिसकती हुई नलनी बोली-''मैं निरपराध हूँ-मौसी! मुझे मत मारो, पहले मेरी बात सुनो।''

फिर भी उस पर थप्पड़ चाँटा की वर्षा हो रही थी। चोट जब असहनीय हो गयी तब नलनी ने हाथ उठाकर रोकने की कोशिश की। पर जल्दी के कारण उसका हाथ रामेसरी की नाक से टकरा गया।

चोट लगते ही रामेसरी का क्रोध दुगने वेग से बहने लगा। चिल्लाती हुई बोली वह-''तो मुझ पर भी हाथ चलाती है, वेश्या की बेटी आखिर... । जैसी माँ वैसी बेटी! नागिन को पालकर मैंने अपने ही घर में जगह दी। हाय रे देव! मैं क्या जानती थी कि यह मुझे ही डसेगी। निकलो मेरे घर से।''

घसीटते हुए आँगन से दरवाजे तक ले आई। नलनी बार-बार हाथ जोड़ कर रो रही थी। पर रामेसरी के दिल मे तो आग जल रही थी। उसे तो कुछ सुझाई नहीं पड़ रहा था-क्रोध के कारण.....। ''मुझे मत निकालो-मौसी। मैं कहाँ जाऊँगी-तुम्ही सोचो? मैं कहीं की न रहूँगी सब सहारा तो छूट गया एक तुम्हारा आसरा है। तुम भी अगर छोड दोगी तो मैं जीऊँगी कैसे?''

रामेसरी की कर्कशवाणी उभरी-''निकल जाओ यहाँ से। जहाँ मन हो वहाँ कर रहो, अरी वेश्या के लिए भी घर और भतार की कोई कमी नहीं है। जहाँ जोगी वहीं एक से एक भड़ुआ पुरुष मिलेंगे।''

फिर भी नलनी ने अंतिम बार कोशिश की। ''नहीं मौसी! मुझे रहने दो। मैं कुछ न बोलूँगी। भाभी मैं हाथ जोड़ती हूँ, रहने दो मुझे।''

कान्ती चमकती हुई निकट आकर बोली माँ, क्या देखती हो निकालो

बाहर.....। अभी नाटक पसारती है। बाद मे छाती पे चढ़के कुकर्म करेगी?''

''क्यों इतनी लांछना लगाती हो–भाभी?''

आगे की बात उसके मुँह मे ही रह गई। रामेसरी ने चॉटा के साथ लात चलाना भी शुरू कर दिया। और उसे घसीटकर दरवाजे से बाहर कर दिया।

''जहॉ मन होता है, वहाँ जाकर मरो या मोज करो। मुझे कोई मतलब नही। खून पी जाऊँगी तेरा–फिर अगर इधर आयी तो ..।''

कुछ से कुछ बकती हुई सास और बहू ऑंगन की तरफ चल दी।

रह गयी अकेली नलनी ...। डगर पर वह अकेली ॲधेरे मे खड़ी थी। कृष्णपक्ष होने के कारण ॲधेरा शनै: शनै: गाँव को निगल रहा था।

नलनी के पैरों मे जैसे सांकल–सी बंध गयी थी। ऑखो से बहते ऑसू को पोछती हुई वह सोचने लगी–''इतनी बडी दुनियॉ....कहॉ जाऊॅ मैं? कौन मुझे आसरा देगा? अभी तक तो देखती आयी हूॅ, सब के सब स्वार्थी है। कुछ देने से पूर्व कुछ लेना चाहते है लोग . . । फिर मैं तो युवती हूॅ। हजार भूखी ऑंखें मेरे पीछे दौडेंगी। किस–किस का सामना कर सकूॅगी मै . ? न जाने मेरे कर्म मे क्या लिखा हुआ है? वास्तव मे मै आभागिन हूॅ। बचपन में ही बाप का साया सर से उठ गया। माँ ने भी छोड़ दिया मुझे . । उसके लिए भी मैं शायद बोझ बन गयी थी। फिर मोसी ने आसरा दिया। उसके स्नेह की छाया में मे पलकर जवान हुई।

वही तो मेरे सुख के दिन थे। फिर मोसी भी मुझे नही रख सकी. । शादी कर दी मेरी। पति के घर भी लाछना प्रतारणा ही मिली। कभी स्नेह की सरिता मे डुबकी लगाकर मे नहा न सकी। और वहॉ से भाग आयी . .। न–न भागी नही बल्कि भगा दी गयी।

मैंने तो सोच लिया था कि सुख के दिन फिर लौट आये है शायद ....। पर कर्म का लेख मिटता भी तो नही है।

अगर ऐसा नहीं होता तो मैंने क्या गलती की थी, जो ऐसी सजा मिलती? शायद, सच में भाग्य लेख के मुताबिक ही लोगो को एक–एक पल काटना पडता था। नही तो मैं पूरी तरह निर्दोष थी। फिर मै दोषी कैसे बन गयी?

अब तो लगता है–दु:ख ही दु:ख है। कही जीवन का मूल तत्व दु:ख ही तो नही है? शायद इसीलिए बच्चे जन्म लेते ही रोने लगते है। हँसते हुए कोई क्यो नही जन्म लेते है? खुशी मिलती है, दो पल के लिए....।

नहीं तो जन्म से मृत्यु तक दु:ख ही दु:ख भरा हुआ है, जीवन में.. .। सुख के लिए लोग कितनी चेष्टा करते हैं! कितनी कोशिश करते हैं। पर कहाँ मिलता है? और दु:ख के लिए न कोई प्रयास, न कोई संघर्ष करते हे। फिर भी कितनी आसानी से व्यथा मिल जाती है पर वह जीवन कैसा जिसमें सिर्फ दु ख ही हो इससे बेहतर तो मौत है जो एक ही बार जिन्दगी की रोशनी बुझा देती है

जब तक मॉस तब तक आस। स्वय मौत को गले लगाना जिन्दगी मे हारने के बराबर है। जो संघर्ष और विरोध से डरते हैं, वे ही अपनी हत्या करते हैं। डरना भी ता एक प्रकार से हत्या ही है, अपनी आत्मा ..।

शरीर बचाने के लिए आत्मा की हत्या करना कहाँ तक श्रेष्ठकर है? नही, मै खुशी हासिल करके रहूँगी। पर कैसे?

हॉ संजय....। वही एक मात्र सहारा है। पर वे भी तो मर्द हैं। कैसे जानूँगी कि उसके मन मे कौन-सा विचार है? आखिर पुरुष तो स्वार्थी होते ही हैं। पर सब एक जैसा कैसे होंगे? न. . न सब नर होत न एक समाना।

विचारों को तजकर वह बढ़ने के लिए उद्यत हुई।

अँधेरे में तेजी से उसके कदम बढ़ने लगे थे, उस रास्ते पर जो गाँव से बाहर की ओर जाता था। वह चाहती थी, उसे कोई न देखे।

सहसा पीछे से आवाज सुनाई पड़ी—"इतने अँधेरे में कहाँ जा रही है?"

संजय अपनी बहन के घर से घूमने निकला था। और अँधियारी होने पर वापस लौट रहा था। तभी उसे नलनी दिखाई पड़ी।

नलनी कुछ पल तक मौन साधे खड़ी रही। जब संजय निकट आया तो वह बोली—"मरने जा रही हूँ।"

संजय चमत्कृत हो उठा। "ऐं ऽऽ क्यों ...? आखिर क्या हुआ? क्यों ऐसी दुख दायी बाते बोलती है?" "दुखदायी नही, सत्य है। आखिर बेसहारा होकर कब तक जीवित रह सकती हूँ मै?"

कहती हुई वह तेजी से बढ़ गयी। सजय कुछ पल तक वही खड़ा सोचता रहा। 'आखिर क्या हो गया—इसे? कहीं ऐसा तो नहीं है कि मौसी की तरफ से ठोकर लगी है? शायद सच मे वह मरने जा रही है। ऐसा सम्भव भी है। एक पति परित्यक्तानारी को अगर मायके में भी आघात लगे तो वह करेगी क्या? ओफ, एक सहृदय निर्दोष नारी मेरे सामने ही बेसहारा होकर मौत को गले लगा लेगी। नही, मुझे रोकना चाहिए। अभी तो उसे चारो ओर अँधेरा ही अँधेरा दिखाई पड़ता होगा। सहारे की एक भी दीपिका उसे नजर न आती होगी। फिर रास्ते मे भटक जाना तो स्वाभाविक ही है।'

उसने सिर उठाकर आगे देखा। नलनी कहीं दिखाई न पड़ी। दौड़ पड़ा वह.. ।

नलनी गाँव से बाहर निकल गयी थी। सजय ने लपककर उसकी बाँहे पकड ली।

नलनी उसकी ओर मुडी। दोनों अवाक होकर कुछ पल तक एक दूसरे की ओर देखते रहे।

सजय के मुँह से धीमा किन्तु स्नेहमिश्रित स्वर फूटा कहाँ जा रही है? इस अधेरे म तो

नलनी बोलना चाहती थी। पर कंठ से आवाज नही निकली। सिर्फ। ऑख से चद कतरे ऑसू निकल पड़े।

"आखिर क्या हुआ आपको? क्यो इस तरह हताश होकर.....?"

नलनी अपने को रोक न सकी। कठ से रोने का स्वर फूट पड़ा। लग रहा था, जैसे व्यथा की अंतिम सीमा पार कर गयी हो।

आर्द्र कंठ से संजय बोला–"धैर्य रखिये, चुप हो जाइये। आखिर किस दु ख की दवा नहीं है।"

कुछ पल रुक कर उसने आगे कहा–"क्या बात है? बोलिये तो सही!"

हिचकी लेकर रोती हुई नलनी बोली–"मैं वैसी जगह जाना चाहती हूँ, जहॉ मेरा अपना कहन वाला कोई न हो। सच मे मुझे इस दुनियाँ से घोर घृणा हो गयी है। मुझे जाने दीजिए। इस जिन्दगी से अच्छी मौत है।"

वह पुनः जाने को उद्यत हुई। सजय ने उसकी राह रोक ली। बोला वह–"आप मरना चाहती है। क्या सोचती हैं, आपके मरने से किसी को दुःख न होगा? किसी का कलेजा नहीं फटेगा? कोई रोयेगा नहीं?"

"हाँ–हाँ मेरे मरने से कुछ न होगा, किसी को ....। उलटे सर से बोझ हल्का हो जाएगा।"

वह पुनः रोती हुई बोली–"क्या दिया है, मुझे लोगो ने....? लाछन, प्रतारणा दु.ख... । जब इन सारी बातों से सतोष नहीं हुआ तो बेरहमी से पीटा भी मुझे . । शरीर की चोट तो लोग सह भी लेते हैं। लेकिन दिल की चोट तो.. । उसकी टीस बार-बार उठती है। मुझे मत रोकिये अब।"

सजय की ऑखो मे ऑसू आ गये। वह बोला–"ठीक है, चले जाइये। पर मैं भी जीऊँगा नहीं। अच्छा होगा मेरे लिए भी कफन तैयार करके जाइये।"

"आप बिना मतलब के क्यो मेरे लिए दुखी हो रहे है? क्यो रोते हैं?"

"बिना मतलब. .।" –दुखमिश्रित हँसी की रेखा सजय के होंठो पर खिच गयी। उसने कहा–"आपके ऊपर जो दुःख का पहाड़ टूटा, उसके लिए जवाबदेह मे हूँ। उस दिन की घटना मेरे कारण हुई, और आज भी मेरे कारण ही आप आश्रय विहीन हो गयी हैं। मैं तो चाहता हूँ–इस पाप से छुटकारा लूँ। लेकिन आप तो.. ..।"

"पर यह कैसे सम्भव होगा?" –नलनी झुँझलाती हुई बोली।

"एक बार मुझे अधिकार देकर तो देखिये। जिस ऑचल मे हर पल कॉटे ही कॉटे उगे हो, वहॉ मैं फूलों की बरसात कर देना चाहता हूँ।"

"नहीं–नही, मै दुखी हूँ। मेरे निकट आने पर आप भी कष्ट भोगेग। मेरे भाग्य में दुख लिखा है, दूसरे को भी अपने क्लेश में घसीटना अच्छी बात नहीं है।"

सजय की ऑखो में आँसू आ गये. और बोली में याचना भर उठी–"जिसे आप दु ख कहती हैं उसे मैं सुख अगीकार करूँगा आप सिर्फ मुझे

स्वीकार कर लें। ये मेरी विनती है, इसे ठुकराइये मत।"

नलनी उसके मुखारविन्द को एकटक निहार रही थी। उसकी ओर देख नहीं रही थी—बल्कि तौल रही थी, झूठ और सत्य को . . .। परखने की कोशिश कर रही थी। वह जानना चाहती थी कि संजय की बातें किस हद तक सत्य हैं, या झूठ का झाँसा देकर पुनः दुख के जाल में फँसाया जा रहा है।

पर उसकी आँखों को यही दिखाई पड़ा कि संजय के मुख पर बालसुलभ भोलापन और सत्यता है। असत्यता, प्रवचना का चिन्ह भी नहीं . . .।

संजय का स्वर उभरा—"क्या सोच रही हो? लौट चलो—मेरे साथ।"

"मैं यहाँ से लौटूँगी नहीं, जहाँ चलना हो यहीं से चलो। पर सोच लो, तुम्हारा भी परिवार और समाज है।"

"एक बार नहीं, कई बार सोच चुका हूँ—नलनी। मेरे संकल्प को समाज और परिवार नहीं तोड़ सकते।"

संजय उसकी बाँह पकड़ कर चल पड़ा।

भावावेश का वह क्षण अत्यन्त निर्मल और मधुर था। स्वप्न लोक की कामना को पूर्ण करने का समय जैसे सन्निकट ही हो....। दो सहृदय अपने अपने मन के सागर में सुखानुभूति के लिए आतुर . .।

दोनों के कदम धीरे-धीरे बढ़ रहे थे। किन्तु मन के पंछी द्रुतगति से उड़ रहे थे . .।

❖ ❖ ❖

गाँव में अफवाहें बड़ी तेजी से फैलती हैं। सन में लगी आग की तरह. . .।

लोग उन्हीं अफवाहों के भँवरजाल में फँस कर अपना समय नष्ट करते रहते हैं।

शिक्षा अतल गहराई में पैठकर सत्य की खोज में सहयोग करती है पर जहाँ अशिक्षा का साम्राज्य हो वहाँ अन्वेषण और आलोचना की बात ही नहीं उठती। जहाँ मूर्खता और बेकारी हो, वहाँ की तो स्थिति ही कुछ और हो जाती है।

बात यह नहीं थी कि संजय नलनी को बिना ब्याहे घर ले आया। बात यह थी कि लाया कहाँ से. .? कौन है वह. . ? समाज के लोग उसके साथ कैसा व्यवहार करेंगे?

वक्त पर ही दुश्मन से बदला लिया जा सकता है। और समय पर ही दोस्ती की परीक्षा ली जाती है।

सोचना यह नहीं है कि वक्त तो सबका बर्बाद होता है चाहे स्वार्थवश स्नेह की वर्षा की जाय या दुश्मनी का बदला लिया जाय।

लोग अपने बारे में तो सोचते ही नहीं। अपने वस्त्र पर दाग लगा हो तो देखने का मौका कम ही मिलता है। पर दूसरे को देखने में थोड़ी भी तकलीफ नहीं होती।

समाज में जो सबल हैं। जिससे लोग भयत्रस्त रहते हैं। उसके बारे में कुछ करते या बोलते हिचकिचाते हैं। लेकिन जो सच्चा इन्सान है, झगडा-झझट से दूर रहता है उसके बारे में सब अपनी-अपनी डुगडुगी बजाने लगते है।

जनेसर जैसे साधु और सच्चे इन्सान के बारे में लोग अपना-अपना बसुरा राग आलाप रहे थे, खुलकर दोषारोपण कर रहे थे। और इधर जनेसर माथे पर हाथ लिए सोच रहा था।

'किसकी बहू-बेटी को उठा कर ले आया, पता नही चलता है। तब न चमकलाल कह रहे थे। 'जवान बेटे पर विश्वास मत करो-जनेसर। शादी कर दो, इसी मे भलाई है.. ।'

पर मैंने बात को अनसुनी कर दी। उस समय तो मै सोच रहा था कि लोग बेवकूफ हैं। जब मै देख ही रहा हूँ कि बेटा सही राह से जा रहा है तो बेकार में कुछ से कुछ बोलना । पर आज सोचता हूँ तो....। अब पछतावे क्या होत, जब चिड़िया चुग गई खेत । कायदे से शादी कर दी होती तो आज एसी नौबत न आती। अब तो साँप छुछुन्दर की गति हो गई है। न छोड़ते बनता है, न रखते बनता है। पूरे गॉव मे इसी बात की चर्चा हो रही है।

ऐसा न हो कि कही लडकी के पक्ष में कोई मुकदमा दायर कर दे। शैतान एसी लुच्ची है कि यहाँ से जाना भी नही चाहती।

सजय की हँसी का स्वर उसके कान में पडा।

''हुँह, साला हँस रहा है। इधर मुझे तो लगता है कि शूली पर चढने को तैयार हूँ। पूछता हूँ तो कहता है अर्जुन ने भी तो सुभद्रा का हरण किया था। फिर भी समाज के लोग उसे वीर पुरुष के रूप में पूजते है।'

इह . साला, उस जमाने को इस जमाने से मिलाता है। उस युग में तो द्रोपदी पॉच पाडव की पत्नी थी। कौन स्वीकारेगे, इस ढंग की बात को .?

समय के साथ लोग बदलते है, बात बदलती है। परिस्थिति बदल जाती है। पर उसे समझायेगा कौन? कौन उसके साथ बात लड़ाता रहे?

''क्या सोच रहे हो-जनेसर? देख रहा हूँ मौन साधे बैठे हो।'' -चमकलाल की आवाज से वह चौक पड़ा। ''आओ चाचा, बैठो। मै तो बड़ी मुसीबत मे फॅस गया हूँ।''

बैठते हुए चमकलाल बोला-''हॉ, यही बात सुनकर तो मैं भी आया था। सोचा, जाकर जान लूँ. । क्या-क्या बात हुई है?''

''बात क्या होगी-चाचा। मुझे तो लगता है, अब बुढ़ापे मे मेरी दुर्दशा होने वाली है। जब तक युवा था, इसी समाज मे सब दॉव-पेंच से बचते हुए घर-गृहस्थी चलाता रहा। पर अब तो बूढा आदमी दीवाल बराबर । जरा-सा इधर-उधर करूँ तो जवान बेटा है जान लो

"हाँ, आ ता तुम ठीक ही कहते हो।"

लम्बी साँस छोडते हुए चमकलाल न आगे कहा–"अभी भी समय है–जनसर। बुद्धि से काम करो। नहीं तो वास्तव में फंस जाओगे, इस बार. । इसी समाज के कई लाग मूँछ पर ताव दे रहे है। कहते है–इस बार न मजा चखवाऊँगा।"

जनेसर के मुख पर भय की रेखा खिच गयी थी। वह चमकलाल के निकट सरकते हुए बोला–"मेरी तो मति भ्रष्ट हो गयी है–चाचा। बुद्धि कुंठित हो गई हे मात्र तुम्हीं लोगो का सहारा हैं। सुझाओ कोई उपाय.. । लगता है, गले में फाँसी की रस्सी लटकी हुई है।"

समाज के इन–गिने लोगो में चमकलाल अपना स्थान रखता था। साहसी को डरा–धमकाकर भीगी बिल्ली बना देना और डरे सहमे लोगों में साहस भर देना वह अच्छी तरह जानता था। यही सब करते–करते बुढापे ने आ घेरा। फिर भी उसका पुराना कर्म जारी था। बोला वह–"जनेसर घबराने स काम नहीं चलेगा। परिस्थिति आने पर इस तरह डर जाओगे तो कैसे क्या होगा? जीवन मे समस्या ता एसे ही आती रहती है। साहसी लोग इससे संघर्ष करके आगे निकल जाते हैं। मे जानता हूँ कि तुम्हारे बेटा ने कोई अच्छा काम नही किया है। किसी की बहू बटी का बिना ब्याहे इस तरह घर ले आना समाज के लिए वास्तव मे नीच कर्म है।"

"एक गलती ता हो चुकी है चाचा... । उसे छोड़ दने मे ता दुबारा वही दाप माथ पर चढ़ जाएगा।"

"हॉ–हॉ, सो तो होगा ही। मै छोड़न के लिए कह भी तो नही रहा हूँ पर अगर ब्याह के बाद लडकी के मॉ–बाप आ जाएं तो क्या करोगे?"

"हम क्या करेंगे–चाचा! पूछ लेंगे वे लोग अपनी लड़की से . । वह तो अपनी मर्जी से आयी है।" "फिर भी समाज है जनेसर! दो–तीन दिनो तक इन्तजार बीच शादी का रस्म पूरा कर लेना।"

"ठीक हे, जैसा आप कहे।"

चमकलाल चल पड़ा था। पर जनेसर के मन मे सोचो के हजारों बादल मडराने लगे थ।

भविष्य का प्रेत भिन्न–भिन्न वीभत्स रूप मे आकर उसे त्रसित करता और पुन: लुप्त हा जाता।

पर इन सारी बातों से दूर नलनी घर के अन्दर विचारो में डूबी बैठी हुई थी। उस ये बाते बड़ी हास्यास्पद सी लग रही थी, बिनु ब्याही दुल्हन....।

बाहर निकलने मे उसे लाज लग रही थी। घर में दुबकी हुई वह लाज और भय से अभिभूत थी। एकांत घर में वह अपने आप से प्रश्न करने लगी–कौन हूँ मैं? क्यों यहॉ बैठी हूँ?

जब मैं पहली बार ससुराल गयी थी तो वहाँ कितनी खुशियों की वर्षा हो रही थी' सभी के मुख पर सुख के फूल खिले हुए थे मंगलगीत गाये जा रहे थे

पर यहॉ तो सब के चेहरे पर जैसे दुःख की चादर तनी हुई है। ऑखो मे लॉछना भरी हुई है। औरते जैसे मुझे देखने नहीं आती, बल्कि घृणा और व्यग्य भरे मुख लिये मुझे धिक्कारने आती हैं। कही यह नफरत जला न डाल, मुझे. . । न जाने हानी किस जलती अग्नि की ओर मुझे धकेलती जा रही है। क्या करूँ? मुझे तो लगता है कि स्वप्न मे डूबी हुई आगे बढ रही हूँ। मेरे पाँव के नीचे फूल हैं या कॉटे, आग है या जल, कुछ पता नहीं चलता। पर इस तरह अधी होकर बढ़ना क्या उचित है?

कहीं मॉ की चेतावनी सत्य न निकले। भविष्य में सार लोगो की तरह संजय भी घृणा करने लगेगे तब मैं क्या करूँगी? अभी तो उसके मन में जलती वासना की आग है। छुद्र स्वार्थ से भरा मन. . .। प्यास से आकुल-व्याकुल है, पर मैं करूँ क्या?

मेरे साथ भी तो विवशता है, जिस सामाजिक लॉछना के बीच संजय को डुबा दिया है, क्या उससे भाग सकूँगी? और भाग कर जाऊँगी कहॉ? दुःख की कल्पना मात्र स ही सुख को कैसे ठुकरा दूँ?

अब तो अच्छा यही होगा कि उसके साथ बढते चलूँ। परिस्थिति के आगे तो लोगों को घुटना टेकना ही पड़ता है। जिस पीड़ा और व्यंग्यबाण से मुक्त होकर मै यहॉ चली आयी हूँ, वहाँ वापस जाकर क्या अपने शरीर और मन को जला डालूँ? नही, ये अच्छा नही होगा.. ।

कितनी आशा है, मुझ पर. ..। कितने विश्वास के साथ संजय लाया है मुझे। क्षणिक ही सही पर अभी तो वह सच्चा प्रणयदेवता है, उसे पूजा करने के बदले कैसे ठुकरा दूँ?

किसे सम्पूर्ण जिन्दगी सुख ही सुख मिला है? सुख और दुःख तो जुडवाँ भाई की तरह है। दोनों का सयोग ही जीवन है। सजय के साथ विश्वासघात करना अपनी ही आत्मा को मार डालने के बराबर है। थोडा देख भी तो लूँ कि इस नई जिन्दगी मे क्या है?

प्यास से व्याकुल आदमी किसी जलाशय के पास दौड़ता है, अगर जल न मिल तो क्या वह मर जाता है? नही-नही, मरता नहीं, सिर्फ आशा टूटती है। पुन दूसरे जलाशय की खोज करता है।

"अभी तक तुम बैठी हुई हो? स्नान भोजन कुछ नहीं किया? अरी, इसके यहॉ कोई दूसरी औरत है, जो तुझे बार-बार कहने आएगी।"

-नलनी की तंद्रा टूटी। चेहरे पर उसने जबरन हँसी लाने की कोशिश की। उसने मुड़कर देखा सुभद्रा खड़ी थी। आन्तरिक व्यथा पर हँसी का पर्दा डाले हुए. ।

संजय के पड़ोस में ही वह सात वर्षीय बच्चे के सग रहती थी।

कुछ साल पहले ही प्रकृति के द्वारा उसे वैधव्य का चोला मिल गया था। पर विधवा होने के भी वह लड रही थी जीवन से

उसने कहा क्यों दु खी हो रही हो? अरी मेर दु ख के बारे में सुनकर

कलेजा मुँह का आ जाएगा। सास-श्वसुर परलोक सिधारे। भरी जवानी में ही पति रूठकर दूसरे लोक भाग गये। पर मैं कठजीव होकर जी रही हूँ। क्या करूँ, बेटे के मोह ने मुझे रोके रखा है।''

अचरजभरी निगाहों से नलनी उसे घूर रही थी। बोली वह-''मैं सुनना चाहती हूँ, आपके साथ क्या सब हुआ?''

''अभी छोड़ो कभी फुरसत में सुनाऊँगी। सिर्फ इतना जान लो कि जिन्दगी एक तमाशा है। मायके की याद में डूबी रहोगी तो कुछ नहीं मिलेगा, व्यथा के सिवा . । लौटकर अगर उधर गयी तो क्या समझती हो, तुम्हें सहारा देंगे कोई? न न, ऐसा मत सोचना। वहाँ तुम्हारे लिए अब उलाहना दु.ख से भरा संसार होगा। सबकी नजरों में सिर्फ व्यंग्यबाण. ..। अच्छा होगा कि भूल जाओ, सारी बात . । जहाँ आयी हो, उसी जगह को स्वर्ग बनाने की कोशिश करो।

उसकी बातों से नलनी पर काफी प्रभाव पड़ा। वह उठकर खड़ी हो गयी। सुभद्रा उसे घसीटती हुई स्नान कराने के लिए ले गयी।

आज सुबह की धूप में अत्यधिक गर्मी थी।

जगदम्बी प्रसाद जोर-जोर से बैलों को हाँक रहा था। जेठ की चिलचिलाती धूप....। उसका शरीर पसीने से तरबतर हो गया था। वह बैलों को रोकने लगा।

''हाँ, हाँ.. .। ठहर रे भाई.. .।''

फिर मेड़ पर चढ़कर घर की ओर देखने लगा। मन विषाक्त हो गया, उसका। मुँह से मद्धिम स्वर निकला-''करीब दस बज गया होगा, जलपान लेकर फिर भी नहीं आयी। बहू को भगाने में तो बहुत तेज है। अब काम एक भी नहीं सम्हलता है, ऊ कौन करेगा?''

उसकी निगाहें टूटे मेड़ की ओर चली गईं। फिर अपने आप बोलने लगा-

''बेटा ऐसा निकला जो कभी खेत की ओर नजर उठाकर नहीं देखता। पहले तो काम-धन्धा पर भी ध्यान देता था। जब से बहू चली गयी तब से जैसे सनक सवार हो गयी। पता नहीं कहाँ-कहाँ रहता है। अब मैं हल चलाऊँ कि इधर मेड़ बाँधू .।''

बोलते हुए वह कुदाल उठाकर मेड़ बाँधने लगा। धान के बीज गिराने का समय समाप्त हो रहा था। इसलिए जगदम्बी प्रसाद बहुत खिन्न था। समय निकला जा रहा था। सब लोगों ने बीज गिरा लिये थे। पर इनका काम सबसे पीछे चल रहा था। एक तो वर्षा पर निर्भर रहने वाला कृषक. । दूसरा मजदूर का अभाव. ..। ई तो समय अंत होते-होते वर्षा हो गयी, नहीं तो वक्त पर बीज ही नहीं गिरता। फिर समय पर रोपनी कैसे होती? एसे समय में जिसके परिवार में दो चार आदमी हैं वो तो सम्हाल लेते हैं लेकिन जो अकेले हैं उसके सामने तो बहुत बड़ी समस्या उपस्थित हो जाती है

बैलों की जाडी आगे बढने लगी। "हे .. हें .फट्ट रुक। जब चलने के लिए कहेंगे तो बैलगाड़ी की तरह ठेलना पडता है। अभी बेमतलब में भाग रहे हैं, हर शखा कहीं के.. ।"

कुदाल रखकर उसने बैलों को आगे से घेर लिया। उसकी नजर गॉव की तरफ दौड गयी।

तम्बाकू रगडते हुए वह सोचने लगा–'नरेश की माँ चली आ रही है। चलती है–कितना धीरे-धीरे... । इधर प्यास से मरा गला सूख रहा है। कोई रहता तो उसे हल पकडा देता। यहीं रामधन को देख रहा हूँ, दोनों बाप बेटे मिलकर कितने अच्छे ढग से खेती करते हे। सालभर न कोई अभाव न कोई तकलीफ .। अन्न से भरा रहता हे–खारा।

पर मेरा तो भाग्य ही खराब है। बेटा दो अक्षर पढ लिया तो बकटट का ढर हो गया। सब कार्य मे अपनी ही बुद्धि लडाएगा। ऊ क्या जाने, खेती में कितनी कठिन मेहनत करनी पड़ती है। सरकार का भी ध्यान इस ओर थोडे है। रोपो कमाओ, काटो, दौनी करो . । फिर अगहन में जब बेचने जाओ तो कौडी के माल अनाज बिकता हे। सबके लिए सरकार है लेकिन गृहस्थ का कोई भी माय-बाप नहीं ह। एक मात्र ईश्वर अवलब होता हे, उसका. । कितनी बिनती करो तो समय पर बारिश होगी। अगर नहीं हुई तो भयकर सूखा.. । ज्यादे वर्षा हो गयी तो सारी फसल बाढ़ में ही दह-भस जाती है। किसान चाहे मरे लेकिन सालाना टैक्स देते जाओ। नहीं तो खेत भी नीलाम हो सकता है। इएह रे फरेबिया सरकार. । मोटी पूँजी वाले माले-माल होते जाओ। और गरीब निरन्तर कंगाली में जीते रहो. .।

"वहाँ मेड़ पर बैठकर क्या सोच रहे हो? जलपान लिये मै कब से यहाँ खड़ी हूँ।"

तीव्र आवाज से जगदम्बी प्रसाद का ध्यान उधर गया। मुड़कर देखा, नरेश की माँ मेंड पर खड़ी थी। बोला वह–"अहा इतना सवेरे आ गयी। अभी तो सूरज उगा ही है। बारह बजे आती तो अच्छा रहता।"

नरेश की माँ फुफकार उठी–"कहाँ-कहाँ करूँ मैं? घर पर भी काम-काज देखना पड़ता है। थोडी सी देर हो गयी तो अब डॉट फटकार सुनो-इनका. । आदमी हूँ, कोई मशीन तो नहीं हूँ।"

"कौन कहता है, तुमको मशीन बनने के लिए? बहू को ला दिया तो उसे मार-पीटकर भगा दिया। अब बाते बनाती फिरती है।"

"मै कैसे भगा दी उसे? ऊ तो अपने कुलक्षणी थी। ऐसी-ऐसी औरतों का किस घर में गुजर चलेगी?" "चुप रहो, तुम्हारे भरोसे वह पडी नहीं रहेगी। बिगाड दो बेटे को भी, बाद मे पता चलेगा।"

"इएह क्या पता चलेगा? उससे अच्छी बहू लाऊँगी मै "

हाँ हाँ देखता हूँ, मैं भी निकालो

जगदम्बी प्रसाद बैठ गया। मिर्च के साथ रोटी मिलाकर मुँह म चबान लगा। समूचा शरीर जैसे झन-झना उठा उसका. . । निवाला निगलते ही जारों म हिचकी-सी उठ गयी। वह गटगटकर लाटाभर पानी पी गया। अच्छ ढंग मे खा भी नहीं मका कि बैल भागने लगे।

क्रोध मे आकर रोटी फेक दी, उसने। और हल चलाते हुए बोला-''जाआ जल्दी नरेश को भेज देना।''

जाती हुई नरेश की माँ फडककर बोली-''घर पर रहेगा, तब न भेज दूँगी। न जाने कहाँ-कहाँ भटकता रहता है।''

वह भिनभिनाती हुई चल पड़ी। हल रोककर जगदम्बी प्रसाद पुन: कुदाल चलाने लगा।

अत्यधिक क्रोध में मस्तिष्क स्थिर नही रह पाता है। विचारो के पंछी पर सवार उसका मन न जाने कहाँ-कहाँ उड-फिर रहा था।

''रे बाप रे बाप.. . ।''

जगदम्बी प्रसाद के मुँह से चीख-सी निकल गई। कुदाल से उसका पैर कट गया। खून का फव्वारा छूटने लगा। आँखों के आगे लाल पीली धारियाँ-सी नाचन लगी। लेकिन कुछ पल बाद ही उसने मन को स्थिर किया। और गमछा मे कटे पैर को बाँधने लगा।

उसकी चीत्कार सुनकर रामधन निकट आ गया था। शायद वह अपने खेत पर से काम करके लौट रहा था। निकट आकर वह बोला-''क्या हुआ जगदम्बी भाई? अरे, तेरा तो पैर ही कट गया। चलो-चलो घर पर. .। अब काम नही कर सकोगे। बैलो को खोलकर मैं लिये चलता हूँ।''

जगदम्बी प्रसाद के मुँह से मद्धिम स्वर निकला-''गया सब काम भाड़ में। अब चार दिन यही घाव लेकर बैठा रहूँगा। तब तक समय ही निकल जाएगा। अब कैसे होगी मेरी खेती?''

आगे-आगे रामधन बैलो की जोड़ी को हाँकते हुए बढ़ रहा था। पीछे से लगड़ाते हुए जगदम्बी प्रसाद बढ़ने लगा। उसके मुँह से मद्धिम स्वर निकल रहा था-''होहि ओहि जा राम रचि राखा
को करि तर्क बढ़ावहि साखा।''

❖ ❖ ❖

नरेश अपने दरवाजे पर बैठा हुआ था। सहसा किशोरीलाल के दरवाजे पर शोरगुल सुनाई पडा। उसके मन मे उत्सुकता जगी। वह उसके दरवाजे की ओर जाने की इच्छा से उठा। उसी समय उसे शिवा आता हुआ दिखाई पड़ा उसने पूछा-''शिवा भाई। इधर क्यो हो-हल्ला हो रहा है? किशोरी चाचा के दरवाजे पर किसी बात का झगडा हुआ है-क्या?''

शिवा के पाँव ठमक गये। वह बोला–''हाँ, किशोरी चाचा कुछ मेहमानों से झगड़ रहे हे।''

''किस बात पर . ?''

''अरे, तुमको पता नही है?''

''नहीं शिवा भाई। पता रहता तो मै क्यों पूछता।''

''इतनी बात की तो जानकारी होगी ही कि किशोरी चाचा की बहू भाग गई। बाप बेटा ने मिलकर बेचारी को इतनी यातना दी कि वह रह न सकी, और भागते वक्त रास्ते मे ही लापता हो गई। न मायके जा सकी न सासुर में रह सकी। न जाने कहाँ गई, अभी तक पता न चला।''

''हँ ई तो कुछ दिन पहले की ही बात है। पर आज फिर क्यों झगड रहे हैं?''

''अरे भैया! किशोरी लाल अपने बेटे की दूसरी शादी करना चाहते हैं। और उसके बेटे को देखने के लिए मेहमान लोग आये हुए है। जब उन मेहमानों को सारी बात का पता चला तो वे लोग किशोरीलाल से गाली-गलोज कर रहे है।''

''इसका मतलब बात तय नहीं हो पायी?''

''शिवा ने नजर मटकाते हुए कहा–''हाँ यही समझो। अब उसके बेटे का ब्याह होना मुश्किल है। और तुम अपने बारे मे भी सोच लो। ऐसी ही बाते तेरी शादी के वक्त भी उपस्थित होंगी।''

कहते हुए शिवा तेजी से चल पड़ा। कुछ पल तक तो नरेश बुदबुदाता रहा। फिर विचारो के भंवरजाल में फँस गया।

वह सोचने लगा–'शायद मै भी जब दूसरा ब्याह करना चाहूँगा तो इसी तरह की अड़चने आएगी। हो सकता है, नलनी के घर वाले भी इस बात में दखल डालें।

ओह! मैं इस बात को जितना सरल समझता था उतनी है नहीं। सभी उकसा रहे हैं, दूसरी शादी के लिए....। पर भविष्य की बात कोई जानते नही। मुझे इतनी जल्दबाजी से काम नही करना था। ठीक ही कहते थे पिताजी .। इस मामले में जरा समझदारी से ही काम लेना अच्छा था। पर माँ की बात पर इतनी शीघ्रता की, वह अच्छा नहीं हुआ।

बहुत दिन हुए एक बार फिर से कोशिश करके देखूँ। कही नलनी का मन शांत हो चला हो। उसकी मौसी समझदार है। ठंडे दिमाग से जरूर इस बात पर सोची होगी। अच्छा होता कि एक बार जाकर भेंट करता।

लेकिन जाते हुए तो लाज आती है। किस मुँह से जाऊँ। धत्.. .जाऊँगा क्यो नही? मेरी पत्नी है वहाँ....। ससुराल है उस गाँव मे। फिर जाने मे क्या हर्ज है? नहीं मानेंगी न इस बार, तब मुँह पर ही गाली दूँगा। दो तमाचा जड कर चला आऊँगा, सीधे ओ भी तो समझ लेगी कि मर्द से पाला पडा है फिर वापस आकर शादी करके दिखाऊँगा उसे लेकिन लगता है मानेगी नही कर्म की ओछी है न

चाल-चलन ही कुलक्षणा के जैसे। पर क्या करूँ, गरदन मे ढोल पड़ गया है त बजाना ही पड़ेगा।

"अरे भाई, क्या मन ही मन बुदबुदा रह हो?"

पीछे की ओर मुडकर देखा-उसने।

"केशव तुम! आओ बैठो।"

"क्या बैठूँ भाई! तुम तो बैठकर ही सारा समय नष्ट करते हो। अपने मन मे जो आता हे, करते चले जाते हो।"

केशव नरेश का साथी था। पढ़ाई के दिनो मे भी। और आज भी. । जब भी दोनो एकान्त में मिलते तो खुलकर बाते होती। एक दूसर की समझ रखते।

नरेश ने पूछा-"क्या करता हूँ, मैं अपने मन से?"

"सब कुछ, भाभी को मार-पीटकर भगा दिया। और आज तक खोज-खबर ली-तुमने?"

"क्या खोज खबर लूँ। वह तो अपने मन की रानी है। मुझ भी कुछ समझ तब न।"

"कैसे समझते हो ओ तुझे कुछ नही मानती थी? अरे तुम भी तो पत्थर क देवता निकले। क्या करती बेचारी?"

"ओ हो, तो तुम भी उसी के पक्षधर हो।"

"हाँ हाँ, यही समझकर मुझ पर भी दोषारोपण कर दो; तुम तो शकालु मस्तिष्क के हो ही। संदेह में जीने वाले जीव. ..। जोड दो मेरे साथ भी उसका गलत सम्बन्ध। और पीटने लगो ढिंढोरा।"

नरेश रोष से भर उठा।

"मुझे इतना बेवकूफ मत समझो, केशव! मैने जो कुछ दोषारोपण किया वह सच था।"

"और उसकी सारी बाते झूठी थी? क्या समझ रखा था तू ने उसे भैंसी? अर पत्नी रखने का भी शऊर होता है। हमारे पूर्वजो ने उसे अर्द्धांगिनी कहा है। मतलब आधा अग....। लेकिन तुम तो उसके साथ जरखरीद गुलाम की तरह व्यवहार करते थ। इतना पढ़ लिखकर भी नारी-पुरुष के सम्बन्ध को नहीं जानते, तो क्या जानत हो? बेवकूफ नही हो तो क्या हो तुम?"

"मैं तो उसके मायके भी गया था। आखिर किस गुनाह की माफी नही मिलती है?"

"ओ.....हो.....किसी की गरदन काट लो और माफी माँग लो। अरे भाई, बार-बार गलती दुहराओगे तो माफी कैसे मिलेगी? वैसी स्थिति रखोगे तब न...।"

"तुम तो ऐसे ही कहते हो। पुरुष-स्त्री में झगडा-झंझट कहाँ नही होता है?"

होता है हम कहाँ कहते हैं नही होता है कलह होता है फिर दोनो

अपनी-अपनी गलती को समझते है। उसके बाद जो प्रणय मे प्रगाढ़ता आती है तो नयी उर्जा के साथ आती है। प्रेमपाश मे और अधिक दृढता आ जाती है। पर तुम तो घृणा पर घृणा की दीवार खड़ी करते चले गये। जिसे भेदना और तोड़ना असम्भव हो गया।''

कुछ पल तक नरेश चुप रहा, फिर लम्बी साँस छोडते हुए बोला-''ठीक है, तुम जैसा कहोगे वैसा ही करूँगा। कहो तो मायके मे जाकर उसका पैर पकड लूँ। तब तो तुझे अच्छा लगेगा।''

''मुझे क्या अच्छा लगेगा भाई! प्रेम किसी पर जबरन लादा नहीं जा सकता। उसके पौधे का उदय तो हृदयस्थली मे स्वयं होता है। तुम तो हमारे साथ ही स्कूल के शिक्षक हो। सब कुछ जानते ही हो। पर जानकर भी अनजान बनते हो।''

''मै अनजान नहीं बनता-केशव! ओ साली परिस्थिति ही ऐसा पेदा कर दी थी।''

''फिर प्यार क्या करोगे। इसीलिए तो घृणा के बदले घृणा मिली, तुझे। अब तुम कुछ नहीं कर पाओगे, खास कर इस मामले मे....।''

''क्या मतलब.....?''

''मतलब यही कि तुम्हारी बीबी तेरे मुख पर थूककर चली गयी, दूसरी शादी रचाने ...। अब वह मायके में नही है।''

''ए....। क्या कहा तुमने. .?'' –नरेश जैसे अविश्वास के सागर मे गोता लगाने लगा।

केशव की बात पर उसे विश्वास ही नही हो रहा था। ऐसा भ्रम हुआ कि शायद उसे दुखित करने के लिए ऐसी बाते कही गयी हो। कौन लड़का वाला इतनी जल्दी तैयार हो जाएगा। लडकियो की शादी कोई खेल नहीं है। बोला वह–''तुम्हारी बाते पूरी तरह झूठी हैं।''

हँसते हुए केशव ने कहा–''हँ हँ ..। अब भी तुझे मेरी बाते झूठी लग रही हैं। अपनी काली-करतूत को भी भूल गये। अरे दुर्दशा करने की भी एक हद होती है।''

''मैंने कुछ खास कहाँ किया। श्रीराम तो पत्नी पर जरा सा संदेह होते ही वनवास भेज दिये थे।''

''और उसी सीता के लिये श्रीराम कभी रावण से युद्ध भी किये थे। सो क्या नही जानते तुम?''

''फिर भी सीता को अग्नि परीक्षा देनी पडी थी।''

''मैं तो मानता हूँ, नरेश! पर श्रीराम की तरह एक पत्नीव्रती कौन-सा पुरुष है? जब पुरुष वैसा नहीं है तो फिर नारी पर दोष क्यों?''

''फिर भी उसने इंतजार तो नही किया। मैंने तो अभीतक शादी नहीं की। क्या शकुन्तला ने अपने पति दुष्यन्त की वर्षों प्रतीक्षा नहीं की थी?

"भाई नरेश तुम तो पुरानी लकीर के फकीर निकले। अब ऊ जमाना नही रहा। इस जमाने में एक चाँटा मारोगे तो तुम्हारी पत्नी दो चाँटा खीचेगी। नारी-पुरुष दोनों को समान अधिकार प्राप्त है।"

कुछ पल चुप रहने के बाद नरेश ने पूछा-"अब क्या करूँ भाई . ।"

"अब करोगे क्या, तुम्हारे खानदान की नाक कट गयी। लोग कहेंगे कि नरेश की पत्नी ने दूसरी शादी कर ली। किस-किस की जुबान बन्द करोगे?"

नरेश के दिल में हलचल-सी मचने लगी। अथाह पीड़ा-समुद्र मे जैसे वह ऊब-चूब करने लगा। आँखो से दो बूँद आँसू निकल पड़े। रूआँसे स्वर में वह बोला-"कमीनी, दगा देकर सजा दे देगी। नागिन इस ढग से डस गई कि मर भी न सकूँगा और जीऊँगा भी तडपते हुए. . ।"

पश्चाताप की अग्नि में न लोग जलते, न मरते हैं। सिर्फ दाह का अनुभव करते है। एक व्यथा की टीस सी भरी रहती है, मन मे . .। जिसका शमन किसी औषधि से भी सम्भव नही।

कुछ पल बाद केशव ने कहा-अब पछताने मे कुछ हाथ नहीं लगेगा-नरेश। मेरी बात मानो तो तुम भी दूसरी शादी कर लो।"

सिर हिलाते हुए नरेश ने कहा-"नहीं। मैं दूसरी शादी नही करूँगा। मुझे तो अब औरत जात से नफरत होने लगी है।"

"उसके बिना तो तुझे बनेगा भी नहीं। क्या सोचते हो, इतनी बड़ी जिन्दगी अकेले कट जाएगी। दिल मे जब वासना का उफान जोर मारेगा तो सारी बात भूल बैठोगे। और उस अवस्था में भी शादी करनी ही पड़ेगी। इससे अच्छा तो ये है कि अभी ही कर लो। उधेड़बुन मे वक्त को हाथ से निकलने मत दो। जवानी तो देखते-देखते निकल जाती है।"

"नही भाई केशव! जिस बात से नफरत हो जाय, उससे दूर ही रहना चाहिए।"

"अरे छोड़ो भी, जिन्दगी चार दिनों की नही जो देखते-देखते गुजर जाय, बल्कि बहुत लम्बी होती है। खासकर उन लोगों के लिए जो इन्तजार करते हैं। मौत का. । जीवन गाड़ी को चलाने के लिए स्त्री पुरुष रूपी दो पहिये का होना अति जरूरी है।"

"कहते तो तुम ठीक हो लेकिन दिल माने तब न.. ।"

"मानेगा भाई! याद तो उसकी आती है, जो तुम्हारी भी याद करे। मै तो यही कहूँगा कि जिस तरह उसने तुझे तड़पाने के लिए दूसरी शादी की है, उसी गाँव में दुलहन ढूँढो। और वहीं से लाओ-बीबी।"

कहते हुए वह उठ गया और नरेश को पीड़ा के अथाह सागर मे छोडकर चला गया जहाँ डुबकी लगाने पर भी व्यथा के सिवा कोई और चीज हाथ न लगे

नरेश के हृदय में कटीली झाड़ी उग आई थी, जो यादों के झोको से रह-रहकर हिलती और कसक पैदा करती थी।

भविष्य की आशंका, सामाजिक व्यग्य का भय भीतर ही भीतर आघात् पहुँचाने लगा था।

❖ ❖ ❖

कोई अलभ्य वस्तु जब प्राप्त होने ही वाली होती है, तो व्यक्ति संदेह और भय मे अत्यधिक डूब जाता है। वह सोचता है–कही यह निधि मिलते–मिलते न खो जाय।

पर जब वही वस्तु उनके अधीनस्थ आ जाती है तो वे भयमुक्त होकर प्रसन्नता मे डूब जाते हैं और उसका उपभोग करने लगते हैं किन्तु कुछ दिनोपरान्त ही वह अमूल्य चीज उसके लिए मूल्यहीन साबित होने लगती है।

संजय को अंत तक डर था कि कहीं शादी मे अडचन न उपस्थित हो जाय। नलनी के घर वाले कोई उपद्रव न खड़ा कर दें। या उसके पति नरेश अदालत मे दावा न प्रस्तुत कर दे। और वह कानून के शिकजे में न फँस जाय। कही नलनी उससे छिन न जाय।

आखिर सामाजिक और कानूनी दोनों दृष्टिकोण से यह ब्याह अवैधानिक था। इसलिए भयभीत होना स्वाभाविक था। किन्तु ऐसा कुछ न हुआ। और संजय को मन चाही मुरादें मिल गई। वह ख़ुशी से झूम रहा था. ..।

नलनी की प्रसन्नता उसके चेहरे से दमक रही थी। हरपल दुःख में रहने के उपरात आज मिली ख़ुशी उसे स्वप्न-सी लग रही थी।

वैशाख की चिलचिलाती धूप मे झुलसे पौधे के लिए वर्षा की एक ही झडी काफी होती है। नव कोमल किसलय से युक्त होकर वह हवा के संग झूम उठते है।

तीन दिन पूर्व ही शादी हो चुकी थी। आँगन के सारे कार्य से मुक्त हाकर नलनी अभी बैठी ही थी कि सुभद्रा आ पहुँची।

प्रफुल्लित होकर वह उठी और बोली–''आओ दीदी बैठो। अकेले तो मुझे अच्छा नहीं लगता।''

सुभद्रा के स्वर मे परिहास भर उठा। बोली वह ''एँ, अब भी तुम अकेली ही हो। अब तो तुम्हारा ओ हर पल संग ही रहता है। कहो तो अभी भी बुला दूँ।''

''नहीं नहीं, छोड़ो दीदी!''

''अब तुम पूरी तरह खुश तो रहती हो? भयभीत तो नहीं रहती हो?''

''हाँ दीदी! ऐसे समय में कौन कहेगा कि मैं दुःख मे हूँ। पर बचपन से आज तक जिसने दुःख काटा हो अगर उसे एकाएक सुख मिल तो वह भ्रम और सदेह में पड ही जाता है मुझे तो एसा लगता है जैसे मैं स्वप्न देख रही हूँ

"दुर पगली! यही तो सुख के दिन हैं। जिन्दगी के ज्यादे दिन तो लोगों के दुःख में ही काटने पड़ते हैं। अगर सच पूछो तो सच्चा जीवन साथी दुःख ही है। सुख तो परदेशी पिया की तरह कुछ दिनों के लिए बसंत लेकर आता है और पतझड़ देकर चला जाता है।"

"हाँ, मुझे भी ऐसा लगता है, कि जीवन का सार दुःख ही है, दीदी। जिन्दगी में लोग बूंद-बूंद करके दुःख रस ही इकट्ठा करते हैं। फिर उससे डर कर भागना कैसा?"

"हाँ आनन्द और सुख तो कभी-कभी दुःख को बढ़ाने के लिए ही आते हैं। नहीं तो जिन्दगी अथाह पीड़ा सागर ही है। और उसमें औरतों की जिन्दगी ...। उसकी तो बात ही मत पूछो। सिर्फ सहना. ..। सर्वस्व न्योछावर करके त्याग की मूर्ति बने रहना ही उसके भाग्य का लेख है।"

नलनी को जैसे कुछ याद आ गयी थी। वह बात को बदलती हुई सुभद्रा से बोली-"दीदी! उस दिन जो तुम दुःख भरी कहानी सुनाना चाहती थी, उसे क्या आज नही सुना सकती? आज तो सिर्फ दोनों ही जने हैं।"

कुछ काल तक सुभद्रा मौनव्रत धारण किए रही। जैसे मन ही मन वह बीते दिनो की बात याद कर रही हो।

"क्या सोचने लगी-दीदी?"

"कुछ नहीं! सुनते ही कि अपनी व्यथा दूसरो को कह देने पर बोझ हल्का हो जाता है।"

"हाँ हाँ, ऐसा अवश्य होता होगा। भीतर की उमड़ती-घुमड़ती पीडा बाहर जो निकल जाती है।"

"हाँ, तो सुनो-यह उस समय की बात है जिस समय मेरा बेटा सिर्फ सालभर का हुआ था। हम दोनो पति-पत्नी बड़े खुश थे। क्योंकि दोनों के बीच प्यार का पौधा उग आया था। मेरे श्वसुर वर्ष पहले ही परलोकवासी हो गये थे। सिर्फ मेरी सास थी। उसे सौतेली सास तुम कह सकती हो। मेरे पति जब जन्मे तो उसके कुछ दिन बाद ही उसकी माँ मर गई थी। और मेरे श्वसुर को दूसरी शादी करनी पड़ी थी।

सौतेली सास को मैं फूटी-आँखो भी नही सुहाती थी। इसके पीछे कारण था-मेरी सास इसी गाँव के दुकानदार जशोलाल से गलत सम्बन्ध रखती थी।

एक दिन जब ऐसा हुआ कि उन दोनों को व्यभिचार करते हुए मैंने देख लिया। और वह देखना मेरे लिए कु-काल बन गया। मेरी सास ने सारा दोष मेरे माथे मढ़ दिया। उसने मेरे पति से कहा-'तुम्हारी पत्नी छिनाल है। जशोलाल से गलत सम्बन्ध रखती है। अगर समाज में नाक बचानी है तो सम्हालो अपनी पत्नी को।'

फिर मेरे ऊपर तो दुःखों की गाज गिर पड़ी। हर पल कुवचन के कटक सा चुभने लगा पति का प्यार व्यापार सा लगने लगा

जो हर क्षण छाया तले ठंडी में विश्राम करता हो, उसे अगर वैशाख की चिलचिलाती धूप में सीमाहीन रेगिस्तान में डाल दिया जाय फिर अनुमान लगाओ कि वह कैसा कष्ट अनुभव करेगा. ..।

जो हर पल पति के प्रेम में डुबकी लगा कर जी रहा है, उसे सिर्फ नफरत मिलने लगे। कोमल गाल पर घृणा भरी चोट पहुँचने लगे तो क्या वह व्यथित कोयल की तरह कुहुक नहीं उठेगी?

पर मैं बार बार यह सोचकर संतोष कर लेती थी कि मैं झूठी नहीं हूँ। व्यभिचारिणी नहीं हूँ। निश्चय ही मेरे सिर से यह कलंक धुल जाएगा। सिर्फ ऊपर वाले पर मुझे विश्वास था।

ऐसा ही हुआ भी. ..। एक दिन मेरे पति कहीं बाहर गये हुए थे। मेरे बेटे को बुखार था। मैं उसके साथ भूखी सोयी हुई थी।

रात का एक पहर बीत चुका था। मैं घर से बाहर निकलना चाहती थी। उसी समय देखा- जशोलाल मेरी सास के घर में घुस रहा है। मैं बाहर न निकल कर वापस बच्चे के पास चली गयी।

न जाने ईश्वर की क्या इच्छा मंजूर थी। उसी समय मेरे पति तेजी के साथ आंगन आये। पसीने से सराबोर . .। उसे बच्चे के बारे मे पता था। इसलिए वह घर आकर बच्चे को देखना चाहते थे।

मैंने अवसर का सहारा लिया। बोली उससे–'इधर कहाँ आ रहे हो? बच्चा तो है उस घर में। अपनी दादी के पास....।'

और मेरे पति हड़बड़ाते हुए उस घर में घुस गये। वहाँ का नजारा देखकर वह भौंचक्का हो गये थे। क्रोध और लाज से उनकी दशा विचित्र होने लगी थी। जशोलाल को लात घात से जो अपमान मिला, उसे सह कर वह चुपके से निकल गया था। मैं दरवाजे के छेद से सारी बाते देख रही थी।

इसके बाद मेरे पति सारी रात ओसार पर बैठकर बीडी फूँकता रहा। न जाने वह क्या क्या विचारता रहा। रोती हुई मेरी आँखें कब नीद के कारण बन्द हो गयी, पता न चला।

जब आँख खुली तो सूरज आसमान से झाँकने लगा था। बाहर निकली तो देखा- मेरे पति ओसारे पर गले में फाँसी लगाकर आत्महत्या कर लिये थे। इसके बाद तो जैसे मेरे हाथ-पाँव फूल गये....। हतबुद्धि सी मैं कुछ पल वहीं खड़ी रही।

अत्यधिक भय के कारण कंठ से स्वर नहीं निकल रहा था। किसी तरह उस घर में झाँकने गयी, जहाँ मेरी सास थी। पर यह क्या. .। मेरी सास के मुँह से झाग निकला हुआ था। मुख पूरी तरह स्याह. ..।

शायद उसने अत्यधिक लाज से विष खा लिया था मेरे रोने का स्वर सुनकर आस-पड़ोस के लोग आये। कुछ लोग स्नेह दिखाये तो कुछ ने व्यंग्यबाण का प्रहार किया।

अन्तत पुलिस और कानून के डर से सब मिलकर अंतिम संस्कार कर दिये

कुछ दिनों तक तो मेरी भी इच्छा थी कि मैं भी इस संसार से चल दूँ। और एक बार ऐसा करने की कोशिश भी की थी... । पर बच्चे के कारण रुकना पड़ा। आज भी वह दिन मुझे याद है—मरने से पूर्व मैं अपने बच्चे को बार बार चूम रही थी। मेरा बच्चा तुतलाहट भरे स्वर में बोला था—"माँ, बापू को तो लोगों ने जला दिया। क्या तुझे भी जला डालेगा? तो फिर मैं किसकी गोद में बैठूँगा? कौन मुझे खाने को देगा? गीत गा-गाकर कौन मुझे सुलाएगा?"

बच्चे की बात से भीतर ही भीतर मेरा कलेजा फटने लगा। मुझे अपनी आत्महत्या का विचार बदलना पड़ा। बच्चे के स्नेह और मोह के कारण मैं रुक गई।

कुछ दिनों बाद ही लोग मेरे ऊपर कीचड़ उछालने लगे। मुझे देखते तो वे सब मन्द स्वर में बोलते—"कुलछनी है। चरित्रहीन है। देखते हो न इसी के कारण शर्म से पति ने आत्महत्या कर ली। सास को विष देकर जान ले ली।"

अब तुम्ही सोचो नलनी, इन सारी बातो में मेरा क्या दोष था? कहाँ है गूँगे और बहरे भगवान? मिलते तो मैं उनसे पूछती—मेरा क्या दोष था, जो मैं इतना कष्ट झेल रही हूँ?

जब किसी स्त्री-पुरुष को मिलते देखती हूँ तो लालसा बलवती हो उठती है। इच्छा जगती है कि उसे आँखों में डुबो कर देखती रहूँ। पर जब लोग मुझे देखते हैं तो शीघ्रता से निकल जाते हैं। जैसे मेरी नजरों में कोई छूत की बीमारी हो। मेरा मुख देखकर लोग कहीं शुभयात्रा पर नहीं निकलते। जैसे मेरा जीवन श्राप से भर गया हो... ।

आखिर जवान विधवा हूँ इसलिए लोग मुझे डायन और चुड़ैल भी समझते हैं। अब तुम्ही सोचो, मेरी जिन्दगी क्या मृत्यु से अच्छी है? इससे मौत बेहतर है न?"

अश्रु से सुभद्रा का पूरा मुख भीग गया था। जिसे वह अपने आँचल से पोछने लगी थी। "धैर्य रखो दीदी! विपत्ति में तो धैर्य ही सबसे बड़ा अवलम्ब होता है। उसे अगर खो दोगी तो जीओगी कैसे? वही तो जीवन रस है। वास्तव में तुम्हारी व्यथा के सामने तो मेरा दु:ख कुछ नही।"

"मुझे जोरो की भूख लगी है।" —संजय की आवाज से दोनों चौंक पड़ीं।

सुभद्रा ने शीघ्रता से आँसू पोछ लिये। "लो आ गया। अब तो तुम अकेली नहीं हो? मैं चलती हूँ।"

कहती हुई वह आँगन से निकल गई। संजय निकट आते हुए बोला—"जब देखो तब आँगन में कोई न कोई रहता ही है। मैं भूखा-प्यासा कब तक तड़पता रहूँ? कुछ मेरे लिए भी तो समय बचा कर रखो। तुम्हें जब कुछ देर नही देखता हूँ तो समझो ...।"

कहते हुए संजय ने उसकी बाहें पकड़ ली। "कोई आ जाएगा।" मन्द स्वर में नलनी बोली—"तुम्हे तो किसी को देखने से भी लाज नहीं आती।"

"लाज किस बात की?"

दरवाजे पर जनेसर का स्वर सुनाई पड़ा... संजय ऽऽ... इधर आओ बेटे... अब लो... कहता हूँ न मैं...

नलनी हँसती हुई बोली–"जाओ देखो। क्या कहते है–पिताजी।"

"अच्छा-अच्छा, आ रहा हूँ तब तुम देखना किस तरह बचती हो।"

चेहर पर मन्द मुस्कुराहट लिय सजय चल पड़ा। नलनी घर के कार्य में व्यस्त हो गई।

❖ ❖ ❖

सोमनाथ परिवहन बस मे उतरा और सीधे गाँव की ओर चल पड़ा।

धूप में गर्माहट बढ़ गयी थी। इसलिए वह यथाशीघ्र घर पहुँच जाना चाहता था।

गाँव से बाहर गये हुए उसे कितने दिन गुजर गये थे। इस बीच ननिहाल जाकर उसन जमीन बेच दी थी। लेन–देन का हिसाब करने में वक्त ज्यादे लग गया था। वह सारे रुपये लेकर घर आना चाहता था। किन्तु जमीन खरीदने वाले महाजन ने रुपया देने म देर लगा दी थी। इसी कारण उसे रुकना पड़ा था।

उसके ननिहाल के कुछ लोग वैद्यनाथ-धाम तीर्थ करने जा रहे थे। निठल्ला बैठा देखकर यात्री सोमनाथ को जाने के लिए कहने लग थे। बूढ़ा कंठीदास उस बार-बार कहने लगा–"अरे भांजे! राज–काज तो होता ही रहता है। थोड़ा धर्म-पुण्य भी कमा लो, जिससे माया मुक्त हो जाओगे। आखिर स्वर्गलोक जाने पर धर्मराज को कहने के लिए कुछ बातें तो होंगी।"

सोमनाथ ने आना–कानी की थी।

"मामाजी! बहुत दिन हो गये। घर पर क्या होता होगा पता नहीं. . ।"

"बाबा वैद्यनाथ की कृपा से सब ठीक ही होता होगा–भांजे। बड-बूढो का कथन है–'धरम करैत जब होए हानि, तइयो नहि छोड़ि धरम बानि।' भाजे मुझे तो अभी तक बेटा भी नही हुआ है। अरे चलो, सुनते है, बाबा वैद्यनाथ की कृपा से सारी मनोकामना की सिद्धि होती है। वैसे तो लोग असत्य का व्यापार ही करते है। दिन रात पाप के कीचड़ में ही लपटे रहते हैं।

पावन गंगा के जलस्पर्श से पाप मुक्त हो जाओगे। कार्य में ही इतना लिपटे रहोगे तो व्रत–तीर्थ क्या कभी कर सकोगे?"

"मामा जी! इन सारी बातों पर हमको विश्वास नहीं होता।"

"अरे भांजे, श्रद्धा और विश्वास रखो। राजा सगर ने अपने पूर्वजों को इसी गगा के पवित्र जलस्पर्श से स्वर्गलोक पहुँचा दिया था। राजा दशरथ ने महान यज्ञ करके पुत्र प्राप्त किया था। फिर तुम्हें क्यों नहीं होता है–विश्वास?"

और अतत: सोमनाथ को जमात में शामिल होना पड़ा था। इच्छित कामना लेकर वह चल पडा था, बाबा बमभोले के पास ।

बाहर निकले हुए करीब एक मास बीत चुका था। उसे घर की चिंता सता रही थी। चिंता में डूबे वह गाँव के चौराहे पर पहुँच गया था अब उसके कदम घर की ओर बढ़ने लगे।

उसी वक्त उसकी निगाह बंसराज पर पड़ी।

''ऐ जी, सुनो बंसराज! गाँव-घर का समाचार कैसा है?''

बंसराज की निगाह में विचित्रता भर गयी। वह तो समझ रहा था कि सोमनाथ को सारी बात मालूम होगी। पर उसके प्रश्न से तो ऐसा लग रहा था जैसे-पूरी तरह अनजान हो, सारी बात से. ..।

बंसराज उसी गाँव का युवक था और रिश्ते में संजय का बहनोई था। इस घटना के बाद वह ससुराल गया तो समाज के लोग उसे व्यंग्यबाण से काफी बिद्ध कर दिये थे।

नलनी के बारे में ऐसी-वैसी बातें सुना कर उसे शर्म के सागर में डुबाया गया तो वह भीतर ही भीतर सोमनाथ पर क्रोधित हो उठा। किन्तु करता क्या? सोमनाथ मिला नहीं। और जब इस वक्त मिला तो सोमनाथ की बातें सुनकर उसे काफी अचरज हुआ। उसने पूछा-''क्यों आपको कुछ नहीं मालूम? ऐसी-ऐसी लाजभरी घटना घट गयी। फिर भी आप ढिठाई से पूछते हैं, गाँव का समाचार... ।''

''कैसी घटना. ?'' -सोमनाथ ने चमत्कृत होते हुए पूछा-''थोड़ा विस्तार से समझाओ। मैं गाँव में नहीं था, इसलिए पूछ रहा हूँ।''

''गाँव में नहीं थे तो कहाँ थे-भाई साहब? क्यों जान के अनजान बनत हो, लाज पर परदा डालने के लिए?''

''सच कहता हूँ-बंसराज! मै तो बाबा बैद्यनाथ धाम तीरथ करने चला गया था।''

सिर हिलाते हुए बंसराज ने कहा-''ओ ऽऽ... । तो ऐसी बात थी। इसका मतलब आपकी अनुपस्थिति में ही काती ने नलनी को घर से भगा दिया और उसने दूसरी शादी रचा ली।''

सोमनाथ का शरीर सिहर उठा। समूचे शरीर के रोयें जैसे खड़े हो गये थे। मस्तिष्क के अन्दर बिजली सी चमक गई थी।

''क्या ऽऽ.. .। नलनी घर से भाग गई? क्या उसने दूसरी शादी कर ली . .? कहाँ? किस गाँव में... ? कहीं तुम झूठ तो नही बोल रहे हो?''

''आप भी भाई साहब कमाल की बात करते है। पूरे नगर में ढिंढोरा पीट दिया गया और राजा को बात का पता नहीं। इस घटना से तो समाज के लोग शर्म से माथा झुका लिए हैं। जो न करे आप... ।''

''मैं क्या करूँगा?''

''आप क्या नहीं करते। ससुराल से भाग के आयी तब आप इसे क्यों नही वापस भेज दिये? सुनते है, उसके पति लेने आये थे तो आपलोगों ने दरवाजे पर से

कर भगा दिया कर्म करते हैं बुरा और फल चाहते हैं अच्छा इएह

लोगों की आँखों में धूल झोंकते हो। कहते हो—मैं क्या करूँगा. . । अपना दोष स्वयं लोगों को दिखाई न पड़ता है।"

कुछ पल तक सोमनाथ लाज और रोष को दबाता रहा। फिर बोला—"किसके साथ भागी वह? और कहाँ है इस समय . .।"

"भैया, ई बात तो कहते हुए लाज आती है।" —सकुचाते हुए बंसराज ने कहा—"वह मेरा-साला है न....संजय। उसी के साथ निकल गयी, नलनी। अभी मेरे ससुराल में ही है। संजय ने शादी रचा ली है, उसके साथ . ।"

उसके मुँह से लम्बा उच्छ्वास निकला—"क्या करेगी बेचारी? आपकी माँ और पत्नी ने उसको पीट पीटकर भगा दिया। अगर संजय न मिलता तो वह आत्महत्या कर लेती।"

"पर क्यों मारा उसे? मेरी माँ तो ऐसी नहीं थी।"

"अरे भैया, मैं क्या जानूँ। घर परिवार की बात है। आप जानिये। पर समाज के लोग तो ऐसे ही बोलते हैं।"

"मुझे तो अभी भी विश्वास नहीं हो रहा है—बंसराज! खैर, सब कुछ समय का फेर है।"

"हाँ भैया, क्या, आपने परिस्थिति मनुष्य से जो न करावे। वास्तव में आपकी माँ ऐसे स्वभाव की तो थी नहीं। लेकिन उस दिन से न जाने क्या बात हुई। सुनते हैं, हर पल गुमसुम बैठी रहती हैं।"

"मेरी पत्नी कांती की क्या हालत है? कहीं वह मायके तो नहीं चली गयी?"

"नहीं भैया, उसे तो मैंने कल ही देखा था। बड़ी खुश नजर आ रही थी।"

सोमनाथ ने लम्बी साँस छोड़ते हुए पूछा—"अब क्या उपाय होगा—बंसराज?"

"मुझे तो कुछ कहते नहीं बनता है, भाई साहब! मैं तो न इधर का हूँ न उधर का। इस बीच ससुराल गया था। वहाँ के लोग मजाक करते हुए कह रहे थे-'क्या महमानजी-आपके गाँव की लड़कियाँ ऐसे ही किसी के साथ भाग जाती हैं? वहाँ मर्द हैं कि सबके सब नामर्द हो गये हैं?' अब सोचिये, सिर शर्म से झुक जाता था। कई लोगों से इस बात के चलते झगड़ा भी हो गया।"

कुछ पल रुककर बंसराज बढ़ते हुए बोला—"अभी जा रहा हूँ। मुझे कुछ जरूरी काम है।"

बंसराज चला गया। लेकिन सोमनाथ के कदम आँगन की तरफ नहीं उठ रहे थे। जैसे पाँव में हजारों मन की कड़ियाँ डाल दी गयी हों।

बुद्धि कुंठित हो चली थी। कभी माँ पर गुस्सा चढ़ता तो कभी नलनी पर . .। कांती के विषय में सोचता तो संदेह की कीड़े कुलबुलाने लगते। आखिर वह खुश क्यों है? विचारों के भ्रमजाल में डूबा वह धीरे-धीरे बढ़ने लगा।

कुछ पल पहले गर्व और शान से सर उठाये चला आ रहा था। लेकिन अब वह लोगों को देखते ही माथा झुकाकर दूसरी ओर देखने लगता था।

❖ ❖ ❖

सोमनाथ का चित्त चिन्ता मे भरा हुआ था। जब उसने ऑगन में कदम रखा तो देखा–उसकी पत्नी कांती गुनगुनाती हुई भोजन बना रही थी। सोमनाथ को देखते ही कांती की गुनगुनाहट बन्द हो गयी।

विचित्र निगाहों से वह अपने पति को घूरने लगी। वह जानना चाहती थी कि उसके पति घटना के बारे में जानते हैं कि नही। पर उसे कुछ भी आभास नही मिल रहा था।

सोमनाथ ओसारे पर जाकर बैठ गया। निस्तब्ध. . । उसकी मॉ रामसरी उसे देखते ही पूछ बैठी–"कहा बेटे! जमीन का पैसा मिला कि नहीं? कहाँ थे, इतने दिनो तक.. .?"

वह पूछती रही और सोमनाथ उत्तर प्रत्युत्तर देता रहा। कुछ पल इधर-उधर की बातो में गुजर गया।

तब तक कांती ने भोजन परोसकर सोमनाथ के आगे रख दिया। प्रथम निवाला उठाते ही सोमनाथ ने पूछा–"मॉ! नलनी को नही देख रहा हूँ। कहाँ है वह?"

वह पूरी तरह अनजान बनने का अभिनय कर रहा था। कांती की निगाह नृत्य करने लगी थी। कभी सास पर तो कभी अपने पति पर....।

रामेसरी बोली–"अब क्या बताऊँ–बेटे! वह कुलच्छिनी तो पूरे खानदान को डुबा गयी। भाग गयी, घर से ...।"

सोमनाथ की आवाज तेज हुई–"भाग गई या भगा दिया तूने उसे?"

"बेटे! उस बात की चर्चा न करो तो अच्छा है। कुकर्मी थी वो.. । अब क्या बताऊँ तुझे–बोलते हुए भी लाज आती है अच्छा हुआ जो निकल गयी, घर से . .। नही तो क्या-क्या नाटक दिखाती।"

सोमनाथ का स्वर व्यंग्य से भर उठा–"अच्छा मैं भी तो जानूँ, कौन-सा कुकर्म किया था उसने? किसने देखा उसे?" "बेटे! मेरी बातों पर तो तुझे विश्वास भी नही आएगा। पूछ लो, अपनी पत्नी से . । उसने तो अपनी ऑखों से देखा था और उसी ने सारी बात मुझे भी बतायी थी।"

"अच्छा, तो आग तूने लगायी मुझे भी बतायेगी?"–उसकी क्रोधयुक्त निगाह कांती पर जम गयी।

कांती तमककर बोली–"सही समय पर बोल दी तो देखो। हुँह, बोल दी तो भी गयी, नही बोलती तो भी....। अपनी ऑखों से देखी हुई बात को कैसे चुप होकर निगल जाती में?"

"हाँ-हाँ, तुम्हारी आँखे बहुत तेज हो गयी हैं न! अब तो तुम ज्यादा दूर तक देख लेती हो।"

"इतने दिनो तक क्या मै अँधी थी? कुछ कारण से चुप रहती थी। नही तो कब न खुल्लम-खुल्ला कह देती रहती।"

तुम अपने आपको अंधी नहीं तो क्या समझती हो? जिसे मैंने बुरा कर्म

करते हुए कभी नहीं देखा, फिर इनमें [illegible] कैसे हो गयी? किसी बात को परखने की क्षमता भी [illegible] दी।''

''आप भी तो [illegible] अपने खानदान की बुराई का ढकना नहीं चाहता है?''

''मुझे समझाने की कोशिश मत करो।' मैं नन्दनी को अच्छी तरह जानता हूँ। बचपन से उसके साथ रहा हूँ। जितना मैं जानूँगा उसके विषय में, उतना तुम नही जानोगी।''

स्थिति को [illegible] बेवजह उसकी ऑखो मे ऑसू आ गये थे। रोते हुए वह बोलने लगी—''मैं ही अभागी हूँ। क्या मेरे मन मे आया जो कुछ से कुछ बोल गयी। [illegible] मुझे क्या लेना-देना था।''

भीतर ही भीतर उमड़ते क्रोध को सोमनाथ दबाता रहा। अंत मे भोजन छोड़कर वह आँगन से बाहर निकल गया।

कांता शून्यता मे आँसू पोंछने लगी।

नरेश चिन्ता निमग्न होकर बैठा हुआ था। कुछ दिन पूर्व से ही उसकी मॉ बीमार रहने लगी थी। वृद्धावस्था के कारण पिता का शरीर जर्जर हो गया था। घर से बाहर तक का सारा कार्य अस्त व्यस्त हो चला था।

इन दिनों में उसकी माँ की ऐसी हालत हो गयी थी, जो भोजन बनाने मे भी अवश थी। बेबसीवश नरेश को ही भोजन बनाना पड़ता था। यह अनुभव उसके लिए बिल्कुल नवीन था। खाना बनाना वह सबसे आरामदेह कार्य समझ रहा था। पर उसे अब यह सबसे कठिन कार्य लग रहा था।

कुछ पल पहले ही रोटी सेंकते वक्त उसका हाथ जल गया था। जलन सी उठ रही थी, तमाम से... । उस टीस में ही उसे अपनी पत्नी की याद आने लगी—''मै उसे कितना डाँटता था! भोजन थोड़ा सा स्वादहीन होने पर तो....। ई तो जानता ही नहीं था कि जलावन का भी अभाव, तेल मसाले का भी अभाव. . । कैसे स्वादिष्ट चीज बनगी? मैं तो सोचता था-भोजन बनाने के बाद दिन भर बैठी रहती है। इसलिए डाँट-फटकार तो साधारण सी बात थी। मार भी खानी पड़ती थी बेचारी को....। आखिर उसके बदले मैं क्या देता था, उसे? न अच्छा भोजन, न अच्छा वस्त्र, न प्रेम भरी दो बातें... ।

**सहने की भी एक सीमा होती है सीमा का अतिक्रमण ही तो सब बुराई की**

ओह.. क्रोध ही सारी बुराइयो की जड़ है। बड़ी-बड़ी घटना जो घटती है, कुकर्म भरा कांड जो होता है निश्चय ही उसके पीछे किसी न किसी का क्रोध काम करता है।

महरानी कैकयी जब क्रोध ओर ईर्ष्या मे जलने लगी तो राम को ग्यारह वर्ष का वनवास काटना पडा था। क्षोभ मे भरे दशरथ ने राम के वियोग मे प्राण त्याग दिये थे।

क्रोध में आकर राजा परीक्षित ने मरे हुए सर्प को मुनि के गले मे डाल दिया था। जिसके कारण मुनि के श्राप का कोपभाजन राजा को बनना पडा था।

न जाने क्रोध की उपज के साथ ही बुद्धि डर कर कहाँ जाती है और व्यक्ति बन जाता है–पशुवत ...।'

ओ भाई नरेश क्यों चिंताग्रस्त बैठे हो?

''क्या कहूँ भैया' मारियो बाण घाव नहि तन में, जिन लगा तिन जाना है।' अब तो क्या करूँ, कुछ सूझता नही जैसे आँखो के आगे एक पर्दा सा छा गया है।''

''मेरी बात मानो नरेश। कर लो दूसरी शादी। ज्यादा सोगोग तो जवानी मे ही बुढ़ापा घेर लेगा।''

''मुझे तो इस संसार में कोई अपना-सा नही लगता। सब छल और प्रपंच से भरे हुए ।''

''अरे, क्या साधु बनने का विचार है। जीना सीखो नरेश। इसी संसार में स्वर्ग और नरक है। जो अपनी तरह से दुनियाँ बसाते है। प्रसन्नता के सागर में डुबकी लगाकर जीते है। वहीं तो स्वर्ग है। पता चला है, तुम्हारी पत्नी ने कहाँ शादी कर ली?''

''नहीं मुझे कुछ पता नहीं।''

''जतनसेरा मे उसका ब्याह हुआ है। छोडो सारी बात को और हिम्मत के साथ चलो। उसी गाँव मे मैंने एक लडकी देखी है। उसी से तेरी शादी होगी। ईंट का जवाब पत्थर ..।''

''कहते तो आप ठीक है, लेकिन मन माने तब न।''

''मन कैसे नहीं मानेगा? क्या उसी के भरोसे बैठे रहोगे?''

''क्या ठिकाना भैया। कहीं वह भी ऐसी ही निकली?''

''तुम भी क्या बात ले बैठे? जानते नही हो 'सब नर होत न एक समाना' जितने मनुष्य है, उतने विचार होते हैं।''

''फिर भी भाई साहब। पिता हैं, माँ है उन सबका क्या विचार है, यह भी तो जानना पड़ेगा।''

''तो तुम क्या समझते हो–नरेश। कोई भी बाप अपने बेटे को क्या इस हाल में शादी करने के लिए नही कहेगा?''

ओह ...क्रोध ही सारी बुराइयों की जड है। बडी-बडी घटना जो घटती है, कुकर्म भरा कांड जो होता है निश्चय ही उसके पीछे किसी न किसी का क्रोध काम करता है।

महरानी कैकयी जब क्रोध और ईर्ष्या में जलने लगी तो राम को चौदह वर्ष का वनवास काटना पडा था। क्षोभ से भरे दशरथ ने राम के वियोग में प्राण त्याग दिये थे।

क्रोध में आकर राजा परीक्षित ने मरे हुए सर्प को मुनि के गले में डाल दिया था। जिसके कारण मुनि के श्राप का कोपभाजन राजा को बनना पड़ा था।

न जाने क्रोध की उपज के साथ ही बुद्धि डर कर कहाँ जाती है और व्यक्ति बन जाता है-पशुवत . .।'

आ भाई नरेश क्यों चिंताग्रस्त बैठे हो?

''क्या कहूँ भैया' मारिया बाण घाव नहि तन में, जिन लगा तिन जाना है।' अब तो क्या करूँ, कुछ सूझता नहीं जैसे आँखों के आगे एक पर्दा सा छा गया है।''

''मेरी बात मानों नरेश। कर लो दूसरी शादी। ज्यादा मारोगे तो जवानी में ही बुढ़ापा घेर लेगा।''

''मुझे तो इस संसार में कोई अपना-सा नहीं लगता। सब छल और प्रपंच से भरे हुए . ।''

''अरे, क्या साधु बनने का विचार है। जीना सीखो नरेश! इसी संसार में स्वर्ग और नरक है। जो अपनी तरह से दुनियाँ बसाते हैं। प्रसन्नता के सागर में डुबकी लगाकर जीते है। वहीं तो स्वर्ग है। पता चला है, तुम्हारी पत्नी ने कहीं शादी कर ली?''

''नहीं मुझे कुछ पता नहीं।''

''जतनसेरा में उसका ब्याह हुआ है। छोड़ो सारी बात को और हिम्मत के साथ चलो। उसी गाँव में मैंने एक लडकी देखी है। उसी से तेरी शादी होगी। ईंट का जवाब पत्थर ...।''

''कहने तो आप ठीक है, लेकिन मन माने तब न।''

''मन कैसे नहीं मानेगा? क्या उसी के भरोसे बैठे रहोगे?''

''क्या ठिकाना भैया! कहीं वह भी ऐसी ही निकली?''

''तुम भी क्या बात ले बैठे? जानते नहीं हो 'सब नर होत न एक समाना' जितने मनुष्य है, उतने विचार होते है।''

''फिर भी भाई साहब! पिता है, माँ है उन सबका क्या विचार है, यह भी तो जानना पड़ेगा।''

''तो तुम क्या समझते हो नरेश कोई भी बाप अपने बेटे को क्या इस हाल में शादी करने के लिए नहीं कहेगा?

कहते हुए उसने चौंककर आँगन की ओर देखा। और जगदम्बी प्रसाद को दखकर बोला–"यह देखो, मौके पर चाचा जी भी मिल गये। पूछ लेने में भलाई है।"

इन दोनो के निकट से गुजरते हुए जगदम्बी पसाद आगे बढने लगा तो केशव ने टोक दिया–"मुनिय चाचा जी। नरेश को वैसे ही रखियगा? सुनते हैं, मिलापुर आ. . । आपकी बहू भाग गयी। और दूसरी शादी कर ली है। इस स्थिति में तो. . ।"

केशव आगे बोला नही सिर्फ नजरें उठाकर उसकी ओर देखने लगा। जगदम्बी प्रसाद कुछ पल तक सोचता रहा। जैसे अन्दर ही अन्दर वह किसी बात की माप-जोख कर रहा हो। कुछ पल बाद वह बोला–"बेटे तुम लोग तो स्वयं समझदार हो, पढे लिखे हो। हम तो ठहरे जमीन से संघर्ष करने वाले किसान... । माँ-बाप ने थोडा बहुत पढा लिखा दिया। खाली वक्त में मदिर पर जाकर बैठता हूँ। साधु सन्तो की बाते सुनता हूँ। किन्तु इन सबसे क्या होने वाला है।"

"फिर भी आपका क्या विचार है–चाचा जी?"

"अरे हम तो श्रीराम के आदर्श को मानने वाले है। जिन्होंने एक पत्नीव्रत का पालन सदैव किया। हमारा समाज भी उसी रामायण के आधार पर चल रहा है जिसमें श्रीराम के चरित्र का वर्णन है।"

"शास्त्र-पुराण की ही बात लेते है–चाचाजी तो कृष्ण भगवान के कई पटरानियाँ थीं। फिर भी सारे समाज के लोग आदर्श मान कर उनकी भी तो पूजा करते है।"

"इसीलिए तो कह रहा था बेटे कि मैं तुम लोगों से वाक्‌युद्ध करने में जीत नहीं सकूँगा।"

"और भी बात है, चाचा। उस युग में जिस तरह श्रीराम थ, उसी तरह माता जानकी भी थीं। जिन्होंने राजपाट का सुख छोडकर पति के साथ वन जाना स्वीकार अगीकार किया। रावण द्वारा अपहरण होने पर भी हर पल श्रीराम का ही ध्यान करती रही। पर आज की बात ही कुछ और है. ।"

"इसीलिए तो कहता हूँ बेटे। तुमलोग स्वय समझदार हो। इस युग से परिचित हो, जैसा उचित समझते हो, वैसा ही करो। मेरी ओर से कोई अड़चन नही है।"

नरेश की माँ कुछ दूर पर खड़ी सारी बाते सुन रही थी। वह निकट आकर बोली–"क्या पडिताऊ बोली मे बोलते हो? मेरा बेटा चुमौना नहीं करेगा तो क्या वैसे पड़ा रहेगा?"

केशव उसकी ओर मुडते हुए बोला "वही तो मैं भी कह रहा हूँ चाची। मेरी बात मानो तो उसी गाव में नरेश की शादी हो जानी चाहिए

"हाँ भतीजे तूने तो मेरे मुँह की बातें छीन ली। ओ कलमुँही भी ना जानेगी। जब मेरे बेटे के सिर मौर, सेहरा बँधे देखेगी तब न दिल पर चोट लगेगी।"

"तो क्या चाची, जतनसेरा लडकी देखन के लिए जाऊँ?" केशव ने पूछा।

"हाँ रे, क्यो नहीं देखने जाओगे। जब उस चुड़ैल का कोई ठिकाना नहीं रहा तो मेरा बेटा क्यो आस लगाये बैठा रहेगा? वह भी तो देख लेगी कि उससे अच्छी बहू मेरे घर में आती है कि नहीं।"

जगदम्बी प्रसाद वहाँ से चल पड़ा। नरेश की माँ ने आगे कहा–"बुढ़ापे मे लोग सठिया जाते हैं। इनकी बात मे मत पड़े रहो। जाओ, कह रही हूँ न . । मै सब बाते सम्हाल लूँगी।"

वह बुदबुदाती हुई आँगन की ओर चल पड़ी। केशव ने पूछा–"तो क्या बात पक्की रही न नरेश?"

नरेश कुछ न बोला तो उसने उठते हुए कहा–"मै चल रहा हूँ। इसी बीच मे सारी तैयारी कर लेनी है।"

कहते हुए वह चल पडा था। बैठा रह गया था- अकेले नरेश .।

❖ ❖ ❖

मुखान्धकार। सघनतम की श्यामल चादर शनै- शनै, तनने लगी थी।

सोमनाथ जनशून्य पथ पर अग्रसर होते हुए गाँव की तरफ बढ़ा जा रहा था। वह भय ग्रस्त था–रजनीचर से, विषैले कीट और सर्प स.....।

किन्तु घर की बात याद आते ही उसके मन में क्रोध उपजता और वह स्वतः भयमुक्त होकर गन्तव्य पर पहुँचने के लिए आतुर हो उठता।

आज सवेर ही तो वह घर से निकला था। अपनी माँ से यह कहकर–'कि मैं सात-आठ दिनों तक वापस नही लौट सकूँगा लेकिन यह तो असत्य बात थी। एक छद्म चाल.. .। पर इस अभिनय मे वह पूरी तरह सफल हुआ था।

अपनी माँ और कांती को उसने बातों के भ्रमजाल मे फँसाकर विश्वास में ले लिया था।

सूरज डूबने के बाद वह शहर से चल पडा था। अपनी पत्नी को जाँचना-परखना चाहता था, वह। नलनी के घर से निकल जाने पर भी वह खुश, क्यो रहती है? और बसराज की बाते भी उसे शंका में डाल रही थी–'भाई सचेत रहना कांती भाभी से। मुझे उसकी चाल-ढाल अच्छी नहीं लगती। तुम्हारे घर की बात है, तुम जानो . । मै ज्यादा खुलकर नही कहना चाहता।'

यह बात जिस दिन से बंसराज ने कही थी, उस दिन से ही सोमनाथ अपनी पत्नी पर गहरी निगाह रखने लगा था।

वास्तव मे कांती कभी-कभी घर से घटे दो घटे लापता रहती थी। कई दिन

तो उसने अपनी ऑखो से देखा था, संध्याकाल मे अपनी मॉ को चूल्हा फूँकते हुए । और काती दो-दो घटे नदारद.. .।

उसकी शका धीरे-धीरे मजबूत होती गई। फिर भी वह मन मे सोचता-'एसा सम्भव कैसे हो सकता है? पति निकट मे हो तो पत्नी कुलक्षनी कैसे हो सकती है? नही, कुचाल नहीं चल सकती। अभाव की न पूर्ति की जाती है। जहॉ अभाव ही न हो, वहॉ लोग क्यों भटके? मैं तो अपनी ओर से उसे किसी बात की तकलीफ नही होने देता। फिर वह ऐसा क्यों सोचेगी?

किन्तु बसराज ने जो कहा वे बाते तो सत्य सी लग रही है। इस बीच मे भी मै उसकी चाल-ढाल, व्यवहार देख रहा हूँ। पहले से बहुत अन्तर आया है। अक्सर जब पति रूठते हैं तो पत्नी मनाती है। पर इमे तो जैसे कोई मतलब ही नही हो।

अगर वह दुःख मे रहती तो ऐसा सम्भव था। पर वह इठलाती है, हँसती है। मनाने का कोई प्रश्न ही नही उठता। जैसे मेरा रूठना, अलग-अलग रहना उसे अच्छा ही लगता है। आज सवेरे मे ही वह गुनगुनाकर गीत गा रही थी-

मन की बतिया मन ही जाने और न जाने राम।

पिया पास सेज मोरी सूनी निदिया भेल हराम .।

हरामजादी....। मै पास मे हूँ फिर भी सेज उसकी सूनी है। और कल गा रही थी, पानी मे तडपेला मन की मछरिया। और मेरी तरफ देखकर हंस रही थी। व्यग्यभरी हँसी ..। जैसे मैं तड़प रहा हूँ, और वो खुश हो। ओह कुछ न कुछ बात जरूर है।

नलनी को भगाने के पीछे भी कोई राज है। शायद उसके रहने से इस कठिनाई हो रही थी। बेनकाब होने का भय था, इसे।

पर कहीं यह बात मैं ईर्ष्यावश तो नहीं सोच रहा हूँ? शंका में तो कहीं नही हूँ? खैर, कुछ भी हो, आज तो पता चल ही जाएगा। दस दिन चोर का तो एक दिन साधु का ।

सोमनाथ गाँव के चौराहे पर पहुँच गया था।

"एकहि पिया पर उमर बितेलिये

दोसर पुरुष पर नजरि न ऽ देलिये

भरल बयस कोना मोरगराज

गमेएवे करबै हे.. .."

शायद हंसराज के दरवाज पर लोकगाथा गायी जा रही थी। पर सोमनाथ का ध्यान उधर नहीं था। दनदनाते हुए ऑगन पहुँच गया।

उसकी मॉ खाँस रही थी। सोमनाथ ने सोचा-'शायद वह बीमार पड़ गयी। सबेरे में बोल रही थी-सरदर्द के बारे में ...।'

'शायद माँ जग गयी है " कांती की फुसफुसाहट भरी आवाज उभरी

सोमनाथ की कुछ पल के लिए सजग हो उठी वह बिना आहट

किय उस घर क आसारे पर चढ़ गया जिस में काती स्यावी हुई थी।

"तुम चिन्ता क्यों करती हो? बूढ़ी है, कुछ नहीं जानगी। अरे, इस कार्य में तो मैं बचपन से ही तेज हूँ।"

जगदीशवा का स्वर सुनकर सोमनाथ गय स भर उठा।

काती की खिलखिलाहट भरी आवाज उभरी–"ऐसा है, तब न. ..।"

जगदीशवा ने कहा–"जब तक हल्ला-फसाद होगा तब तक मैं नौ दो ग्यारह. .।"

लम्बी साँस छोडती हुई कांती बोली–"पर जब स नलनी को मार पीटकर भगायी हूँ तब से वे मुझे शंका की निगाह से देखते हैं। इस बीच में तो कभी ठीक से बातचीत भी नहीं किय।'

बच्चा चाहिए....सम्पत्ति का रखवाला.. । और उस नपुंसक स बच्चा तो होगा नहीं। ई तो तुम समझती ही हो।"

काती का स्वर उभरा–"फिर भी मेरे पति हैं। समाज क लाग तो . ।"

हँसते हुए जगदीशवा बोला–"अरे उस नामर्द स क्या होन वाला है। उसको तो बच्चा चाहिए, और बच्चा मैं पैदा करूँगा। फिर सारी बातें खत्म ...। अगर जान भी गया तो वह तुझे घर से भगा देगा- यही न. .। फिर भी तुम्हारा बच्चा तेरे साथ रहेगा। सम्पत्ति का रखवाला....तो आखिरकार वही होगा।"

बाहर दावाजे पर खडे सोमनाथ क्रोध से ऐंठने लगा। पूरे शरीर में कम्पन सा होन लगा। अन्दर का पुरुष गुर्राने लगा। सरोष वह गरज उठा–"साले, हरामजादे ऽऽ. ..। मैं नामर्द हूँ। निकलो बाहर.. .। आज बाप से मुलाकात कराता हूँ। और तू छिनाल....। आज तो तेरी....।"

उसने लपककर आँगन मे पड़ी लाठी उठा ली। और किवाड़ मे धक्का लगाना चाहा।

उसी समय जैसे भूकम्प हुआ हो। 'धडाक' की आवाज के साथ दरवाजा खुला। और आँधी-तूफान की तरह जगदीशवा बाहर निकला।

वह इतनी जोर से सोमनाथ को धक्का दिया कि वह लड़खड़ाकर चारोंखाने चित आँगन मे रखी चौकी पर गिर पडा।

'फटाक'! सोमनाथ का सर काठ की चौकी से टकराया। आगे वह कुछ बोल भी नहीं सका। माथे से रक्त बहने लगा था। शायद वह संज्ञाशून्य हो चला था। वस्त्र सम्हालती हुई काती शीघ्रता के साथ बाहर निकली। स्थिति की पूरी तरह जायजा लेने के बाद वह जोर-जोर से चिल्लाने लगी–"कोई है, . दौड़ो ऽऽ. ..। माँ जी, उठिये। इसे प्रेत शायद पटक दिया। इतनी रात को न जाने कहाँ स चले आ रहे थे बाप रे माथे से खून बह रहा है

कहती हुई वह सोमनाथ के सिर को कपडे मे बॉधने लगी।

काती के चिल्लाने की आवाज मे दो-चार पड़ोसी जमा हो गये। गमेसरी घर से निकलते ही घबराहट भरे स्वर मे बोली-"क्या हुआ मेरे लाल को.. .?"

माथे से बहते खून को देखकर वह रोने लगी-"किसने मारा मेरे बेट को .?"

पडोसी नेबीलाल बोल उठा-"मारेगा कोन. .इसके साथ किसी की दुश्मनी थोडे है। लगता हे, भूत-प्रेत का चक्कर है। रात-बिरात कुछ बूझता नहीं है। पानी छीटो मुँह पर....।"

क्षणिक भर उपचार से सोमनाथ की चतना वापस लौट आयी थी।

वह बैठ कर चारों ओर दृष्टि घुमान लगा। काती से नजरे मिलते ही उसके मुख पर घृणा की लकीरें फैल गयी। भीतर ही भीतर क्रोध उफन रहा था। किन्तु पडोसियो को देखकर वह बोलना नहीं चाहता था।

काती नजरे झुका कर खड़ी थी। जब उसने सोमनाथ की ओर देखा तो उसकी आँखों मे आँसू भर उठे। वह पूरी तरह भयत्रस्त थी। पर बाहर प्रकट नही होने देना चाहती थी।

उसकी मॉ रोती हुई अपने बेटे को समझाने लगी-"बटे। इतनी रात को क्यो आया तू? आज तो तेरी जान बच गयी, नहीं तो प्रेत खा ही जाता।"

काती की थरथराहट भरी आवाज उभरी-"वही तो मै कहती हूँ।"

सोमनाथ विवशतावश कुछ बोल नहीं रहा था। सिर्फ अन्दर ही अन्दर सोच रहा था-'झूठ बोलने में आखिर तेज है-कितनी.. .। कौन कह सकता है कि कुछ पहले ही इसने कुकर्म किया है? मे कुछ बोलूँ भी तो कैसे? पड़ोसी भी सुनेंगे तो मैं स्वयं ही नगा हो जाऊँगा। माँटी में मिल जाएगी-इज्जत....। अच्छा है कि कुछ न बोलूँ। अब जो करना होगा, मैं स्वयं करूँगा।'

उसकी मॉ सहारा देकर उसे उठाने लगी। सोमनाथ चुपचाप सोने के लिए चल पडा।

रात के गहरे सन्नाटे को उल्लू की आवाज चीर रही थी।

❖ ❖ ❖

केशव छः मास पहले से ही जिस कार्य के लिए प्रयत्नशील था, वह आज पूरा हो गया था।

रात मे ही नरेश की दूसरी शादी हो गयी थी। लड़की के पिता जशालाल के दरवाजे पर सारे लोग एकत्रित थे। दुल्हन की विदाई का मुहूर्त बीता जा रहा था।

जशालाल का बेटा दौड-दौड कर सारा सामान एकत्रित कर रहा था। रात मे ही उसने कई बार गाँजा पी लिया था इसलिए आँखें लाल थी अपने हट्ट कट्ट

शरीर से वह बार-बार पसीना पोछता और लम्बी-लम्बी मूछ पर हाथ फेरने लगता।

जतनसेरा के सारे लोग उससे आतंकित रहते थे। क्योंकि वह अगल-बगल के सारे लुच्चे-लफँगों का सिरताज था। समय पर खेती करता और भैंस का दूध पीता। इसके अलावा गाँजा पीकर आवारा लड़कों के साथ जुआ खेलता। यही उसकी दिनचर्या थी।

केशव आज बहुत खुश था। इसके पीछे कारण था-देवा की वे बातें जो छह महीना पूर्व उसने केशव से कही थी-'अरे मास्टर तू मेरी बहन की शादी करवा दो। फिर देखो न तुम पर कौन उँगली दिखाता है। तुम कहते हो न, जमीन पर झगड़ा है। समझो सब झगड़ा रफा-दफा . .। एकबार दस गुण्डे, हमेंगी के साथ आऊँगा, और खेत का सारा धान काटकर तुम्हारे आँगन में जमा कर दूँगा। कोई साला बोलेगा तो सिर काट लूँगा-उसका. .।'

इसी बात से केशव खुश था। वह सोच रहा था-'वह जो संजय के मामा गणपति से दो बीघे जमीन पर झगड़ा है, उस पर आसानी से कब्जा हो जाएगा।

इस देवा के सामने धरमपुर का कौन टिकेगा? देख रहा हूँ-इस वक्त भी सारे बागती उससे डरे हुए हैं और संजय भी क्या समझेगा-उसी के गाँव से फिर नरेश दुलहन लेकर जा रहा है। बहुत अकड़ कर चलता था। एक ही तीर से हमने दो शिकार कर डाला।'

स्त्रियाँ बिदाई गीत गाने लगी थी।

'कतेक मनोरथ से शीला दाये के पासल हुँ
सेहो धिया आई चलि जाय
जागेवल नेहिया
जुग-जुग से...
दहो, वहो नीर दहाय . .।

संजय बहुत देर से सोच रहा था कि जाकर देवा के द्वार पर देख आऊँ, कौन-कौन आये हैं? हो सकता है-मेरे मामा भी आये होंगे.. .। पर उसकी इच्छा दबकर रह जाती थी। वह सोचता-लोग क्या कहेंगे? इसी लड़के के कारण नरेश को दूसरी शादी करनी पड़ी।

सब जान-पहचान के हैं। कहीं मेरी भर्त्सना न करने लगें। इसी लाज के कारण उसके पग उठते नहीं थे।

रात से ही उसका वक्त अजीब उहा-पोह में गुजरा था। कभी उसको अपने ऊपर क्रोध आ जाता तो कभी नलनी पर भी लहराने लगता।

नरेश की याद आते ही बहुत-सी पिछली बातें स्मरण पटल पर नाचने लगतीं। पर विदाई का समय आते ही उसने सारी लाज के बाँध को तोड डाला।

'आखिर एक न एकदिन धरमपुरा तो जाना ही पड़ेगा तो क्यों न आज ही सबके समक्ष चला जाऊँ? आखिर मेरी गलती ही क्या है? मैं किसी को गलत नहीं

समझता। अंत मे एक दूसरे के साथ नही निभ पाया तो-अलग हो गये। अपना-अपना विचार है। इसमे भीतर ही बैर रखने से क्या फायदा? परिस्थिति से समझौता कर लेना ही अच्छे इन्सान का कर्त्तव्य है। कब तक मनुष्य अपने आप से लड़ता रहे?

सोचते हुए-वह देवा के दरवाजे पर पहुँच गया।

ज्योंही केशव की नजर उसपर पडी। वह फुफकार उठा-''साला आ रहा है-खुराफाती! कोई न कोई नाटकबाजी जरूर करेगा।''

बरातियों के मध्य में आकर सजय ने इधर-उधर नजर फिरायी। शायद वह अपने मामा गणपति का खोज रहा था। पर वे तो आये ही नहीं थे। फिर मिलेगे कैसे? उसने आगे बढ़कर एक आदमी मे पूछा-''मेरे मामा जी आये है कि नही?''

उसके जवाब देने स पहले ही केशव उसे सुना-सुनाकर बोलने लगा।

''अरे जूठा थाल में खाने वाले यहाँ कैसे पहुँच गया-भाई? क्या लाज सकोच को घोलकर पी गया है? इतना बड़ा मुख हमने पहले कभी नही देखा। जो औरत इसके साथ भाग आयी है, वह कितनों के साथ रात बितायी होगी, इसका कोन पता लगा सकता है। साले, जिसे जूठन खाने की आदत है, उसकी तो बात ही कुछ और है।''

सजय के मन मे क्रोध का तूफान-सा मचने लगा। उसने फुफकारते हुए कहा-''मेरे गाँव में हो केशव, इसलिए तुम्हे छाड रहा हूँ। नही तो बाप से भेंट करवा देता। अरे पत्नी रखने के लिए कमर में ताकत चाहिए। ताकत नही रहेगी तो ऐसे ही घर आयी बीबी भाग जाएगी।''

''सुनते हो भाई। हमराजादे कुकर्म करके भी गरज कर बोलता है। उसी समय मैंने नरेश से कहा था कि कर दो मुकदमा। पर इसने कहा सबकी बेइज्जती होगी। आज अगर कानून का सहारा लिया होता तो क्या जबान खोलने का साहस होता इसको?''

नरेश के पिता जगदम्बी प्रसाद ने दूर से ही चिल्लाकर कहा-''तुम लोग आपस मे मत लडो। चुप रहो संजय, और तुम भी... ..... ।''

''मै तो चुप ही हूँ। पर इसको भी तो चुप रखिये। नहीं तो बारात मे क्या आया है, हाथ-पैर तोडकर भिजवा दूँगा यहाँ से. . ।''

केशव कूदकर सजय के समक्ष आ गया और बोला-''तू मेरा हाथ-पैर तोड़ेगा। क्या समझता है? नामर्द के यहाँ बाराती आया हूँ! मुझे नरेश मत समझना। अभी मुँह तोड़ दूँगा तुम्हारा।''

कहते हुए उसने संजय को धक्का लगा दिया। संजय ने लपककर उसका कठ पकड लिया और बोला-''मेरे गाँव मे आकर मुझ पर रोब जमाता है। गरदन तोड दूँगा

क्रोध से काँपते हुए केशव बोला–"छोड़ो मेरी गर्दन . नहीं तो बुरी बात हो जाएगी। गला दबाना हो तो अपनी बीबी का दबाओ। अरे, उसके पेट में तो बच्चा होगा न तो वह भी नरेश का ही होगा"

केशव कुछ आगे बोलता, उससे पहले ही संजय का थप्पड़ उसके मुँह पर पड़ा।

देवा गरजते हुए बीच में आ गया था–"मैं कहता हूँ संजय। निकल जाओ यहाँ से। मेरे बाराती पर अब अगर हाथ उठाओगे तो मैं तुम्हारा वह हाल कर दूँगा जैसा गाँव में किसी का न हुआ था।"

जगदम्बी प्रसाद भी बीच-बचाव करने लगा। बारातियों में शोरगुल होने लगा था। अपमान सहकर संजय बुदबुदाते हुए वहाँ से चल पड़ा। उसके मुख पर घृणा की कई लकीरें फैली हुई थीं और मन तिक्त....।

केशव उसके विपक्ष में सारे लोगों को उकसा रहा था। गिन-गिनकर उसके अवगुण को सबके समक्ष प्रकट कर रहा था।

जगदम्बी प्रसाद के मुँह से मद्धिम स्वर उभरा–

"एक कनक और कामिनी, विपल लिया उपाय।

देखत ही में विष चढ़े, चाखत में मर जाय।।"

उसने उच्च स्वर में आगे कहा–"शांत रहो, भाइयों। चलो, विदाई का समय हो रहा है।"

सारे बाराती वापस जाने की तैयारी में जुट गये थे।

घृणा की आग जब सुलगती है तो प्रेम का पौधा झुलसने लगता है। और शनैः शनैः सारा कुछ स्वाहा होकर घृणा के क्रोड़ समा जाते हैं।

परिस्थिति का चक्र नये सिरे से नाच उठता है। उस दिन जो संजय बारातियों के द्वारा अपमानित हुआ तो वह घर नहीं जा सका। अपमान का विष जैसे उसके अंग-अंग में समा गया था। मन उद्वेलित हो उठा था।

ज्योंही वह घर की तरफ कदम बढ़ाता कि उसे केशव की बात याद आ जाती–"जो औरत इसके साथ भाग आयी है। वह कितनों के साथ रात बितायी होगी। साले, जिसे जूठन खाने की आदत है. ...।"

और उसके मन में अजीब-सा अंधड़ मचने लगा। उसे ऐसा आभास होता, जैसे-अपने घर की ओर नहीं जा रहा हूँ बल्कि ऐसी नारकीय गुफा में घुसता जा रहा हूँ, जहाँ विषैले कीट और सर्प है, बजबजाते पिल्लू है तथा दुर्गन्धयुक्त वातावरण है ..।

अन्ततः उस दिन वह गाँव के बदले बाजार की ओर मुड़ गया था। गाँव से दो मील उत्तर स्थित, वह नरहैआ बाजार में दिनभर भटकता रहा था।

घंटों भटकने के बावजूद भी उसका मन शान्त नहीं हुआ। अनेक विचारों का

बवडर उठता और धीरे-धीरे विलुप्त हो जाता। भविष्य के रगीन परद तार-तार हो चले थ। जिसे फिर से सीना-पिरोना असम्भव सा लग रहा था।

सुनहल वर्तमान को जैसे सामाजिक व्यंग्यवाण ने छेद डाला था। मानसिक उलझनों से संघर्ष करके वह सिर उठाना चाहता पर लाज टीस बनकर रह-रहकर उभरती और सर झुक जाता।

और उस दिन जो वह अपमान का घूँट पीकर गॉव स गया तो आज लौट रहा था। इस बीच मे कई दिनो का समय घनजीत चाय वाले के घर गुजारा था।

धनजीत जो उसके कॉलेज के दिनों का साथी था। लेकिन गरीबी के कारण पढाई छोडनी पड़ी थी। चाय और जलपान की छोटी सी दूकान चलाकर वह अपन परिवार की परवरिश कर रहा था।

परिवार के नाम पर मात्र उसकी एक बहन थी गिन्नी! जवानी बीतती जा रही थी। पर दहेज के अभाव मे ब्याह नही हो पा रहा था। दोनो भाई-बहन मिलकर जी तोड़ मिहनत कर रहे थे। पर मन की चाहत यथाशीघ्र पूरी नही होती......।

आखिर अभिलाषाओ का अम्बार किसके मन मे नहीं होता? कोन नही अपनी सारी अभीप्सा की तुष्टि यथाशीघ्र करना चाहता? इसके लिए इन्सान जी-तोड मिहनत भी करते हैं। पर क्या सबकी कामनाएँ मिट जाती हैं? पिपासा की संतुष्टि हो जाती है? नही, कुछ लोग तो मजिल के करीब पहुँचते-पहुँचते भी छिटक कर दूर गिर जाते है। सिद्धि निकट रहने पर भी हाथ स निकल जाती है।

आखिर परिस्थितिरूपी दुश्मन जो खडा हो जाता है। कितने एसे इन्सान हुए हैं जिन्होने इन परिस्थितियो का गला दबाकर अपने ऊबड़-खाबड़ पथरीले मार्ग को समतल बना दिया हो? और गगनचुम्बी मंजिल को तत्क्षण स्पर्श कर लिया हो?

फिर भी इन्सान आशा के सहारे जीता है। और निरन्तर सघर्ष से सब कुछ प्राप्त भी करता है।

धनजीत भी आशा का दीप जलाये सघर्षरत था....।

सजय कई दिनों तक निठल्ले बैठा रहा। घनजीत से सात्वना ओर उपदेश का स्वर सुनता रहा। अंततः उसे असहज हो गया, वैसे बैठे रहना......।

धनजीत ने उसे परामर्श दिया था-"तुम अगर दूकान चाहते हो तो कुछ पूँजी का प्रबन्ध करूँ और मेरे साथ तुम भी एक दूकान खोल दो। स्कूल मे पढ़ाते हो, उससे भी कुछ पैसा निकलेगा ही, और इधर दूकान रहेगी। मेरी समझ से अच्छी प्रगति कर लोगे।

अत मे सजय ने उसकी बात मान ली थी। पूँजी की व्यवस्था करने के लिए ही वह घर की ओर आ रहा था।

रास्ते में उसे घनजीत की बहन के मुँह से सुनी बातें याद आने लगी थी

जीवन में जुडना और टूटना तो लगा ही रहता है। लोग एक से मिलता है तो दूसरे से बिछुड जाता है। संयोग और वियोग तो साथ-साथ चलता है। अब देखो न पड़ोस में ही सेवाराम का अपनी पत्नी से झगड़ा हो गया। इतना बडा टण्टा खड़ा हो गया जो दोनो अलग हो गये। बूंद से बढ़ते-बढ़ते समुद्र. . .।

दोनों ने अलग-अलग शादी रचा ली। फिर आप तो जवान हैं, सुन्दर हैं, क्यों भीतर ही भीतर घुलघुल कर जीना चाहते हैं? जिन्दगी है तो सिर्फ खुशी से जीने के लिए ....। दुःख की चादर को उतार फेंकिये। मैं तो यही कहूँगी.. ...।

ये बात सुनते समय संजय को लाज भी आयी थी। फिर भी उसने प्रत्यक्ष रूप में गिन्नी को कुछ न कहा था। पर अपने दिल की बातें जब वह धनजीत को सुना रहा था, तो शायद ओट मे खडी होकर गिन्नी ने सुन ली थी। और उस दिन से संजय के साथ उसकी आत्मीयता बढ़ने लगी थी। नपे-तुले और ढके शब्दों द्वारा वह संजय के दिल पर मरहमपट्टी-सी लगा देती, कुछ पल के लिए ही सही.... .।

किन्तु संजय जैसे खुशी के सागर में डुबकी-सा लगा जाता।

अत्यधिक प्यासे के लिए तो थोड़ा भी जल जीवन रक्षा का साधन बनकर प्राप्त होता है।

सोचो मे ही बाजार से लेकर घर तक की लम्बी दूरी तय हो गयी थी। संजय द्वार पर पहुँच गया था। वह ये सोचकर आया था कि पिताजी से कहकर कुछ पैसों का प्रबन्ध कर लूँगा। फिर वापस जाकर धनजीत के साथ एक दूकान खोलूँगा। और इस गाँव की घुटनभरी जिन्दगी से मुक्त होकर वहीं रहने लगूँगा।'

यहाँ तो जब नलनी से सामना होगा, तब शंकाओं के मेघ उमड़ेंगे। घृणा की लहर सारी देह मे दौड़ेगी। मन क्षोभ से भरा रहेगा-हरपल ...।

दरवाजे पर पहुँचते ही उसे बच्चे के रोने का स्वर सुनाई पड़ा। भीतर ही वह चौंक उठा।

आँगन से निकलती सुभद्रा की दृष्टि उस पर पड़ी। खुशी की लहर-सी उसके मुख पर दौड़ने लगी। हर्ष के साथ बोली वह-"संजय। तुम कहाँ चले गये थे? आओ, देखो तेरे घर लक्ष्मी पैदा हुई है। फूल-सी सुन्दर तुम्हारी बेटी। आओ न देखो. ।"

आँगन की ओर बढ़ते कदम एकाएक रुक गये थे। संजय के मुँह से अचरज मे डूबा स्वर उभरा-"ऐं ऽऽ...। कब?"

फिर वह धम्म से ओसारे पर बैठ गया था। जैसे लम्बी दूरी से दौड़ते हुए आया हो, और अवकाश पाते ही बिना देखे गंदी जगह पर थकित होकर गिर पड़ा हो।

सुभद्रा की आवाज पुनः उभरी-"अरी गहबरिया चाची! संजय आ गये। दिखाओ बच्ची को....।"

गहबरिया चाची चमकलाल की पत्नी थी। किसी के यहाँ बच्चा जन्म लेता तो गहबरिया चाची वहाँ जरूर पहुँचती और उसे तेल लगाना सिखाती या घरेलू दवा के बारे मे बतलाती। आखिर सब औरतें तो बच्चे की हिफाजत के बारे में जानती नही। वहाँ पहुँचकर वह उसे सारी बात सिखाती और अपना रोब जमाती। नाम तो उसका कुछ दूसरा ही था लेकिन एक भगत के साथ गहवर मे कुछ गुप्त बातें करते देख समाज के लोग उसे गहवरिया चाची के नाम से पुकारने लगे थ। अब भी लोग उसे पुरानी बातो की याद दिलाते तो गहबरिया भाभी उसे गाली में डुबा देती थी। आखिर जवानी के दिनों मे गलत कदम तो उठ ही जाते है। पुराने घाव को कुरेदने से क्या फायदा ..?

फिर भी समाज के लोग उसे प्रत्यक्ष में प्रतिष्ठा की निगाह से ही देखते थे। कारण बच्चे तो सबके घर जन्म लेते है। और उसके बारे मे सब कुछ जानती थी–मात्र गहबरिया काकी। जरूरत तो पड़ेगी ही सबको....।

वैसे मुँह पर ही गलत–सही सारी बाते कह देती थी वह....। पर स्वार्थवश कुछ लोग उसे भला बुरा कहने से हिचकते थे।

गहवरिया काकी बच्ची को गोद में लिए बाहर निकली–"रे संजैया ऽऽऽ. । देखो न। मुँह तो तुम्हारे जैसे नहीं मिलता है, पर पैर थोडा–थोडा तेरी तरह लगता हे। क्या करोगे–चुमौना मे ऐसे ही होता है। तेरे ब्याह का तो सात आठ महीने से ज्यादा हुआ नही होगा, और ई छोकरी जन्म गयी. .। खैर, छोड़ो इन बातो को. .।"

हाथ बढ़ाकर वह संजय की गोद में बच्ची को रखती हुई बोली–" कुछ हो, अच्छी है–देखने मे. .।" "अरे छोडो चाची... । मेरा हाथ-पैर गदा है। अभी घर मे जाकर सुला दो।"

संजय के स्वर में कम्पन भरा हुआ था। भीतर ही भीतर से कम्पित था–उसका मन....। अन्दर में उठती आँधी को वह दबाने का प्रयास कर रहा था। पर गुस्सा जैसे फटकर बाहर निकलता हो, वैसे ही उसके मुख पर भीतर की बाते आवेश के रूप में प्रकट हो रही थी।

वास्तव में छः–सात मास पूर्व ही तो उसकी शादी हुई थी। फिर बच्चा कहाँ से आया? केशव की बाते याद आने लगी, उसे–'गला दबाना है तो अपनी बीबी का दबाओ। अरे, उसके पेट में बच्चा होगा तो वह भी नरेश का ही होगा।' उफ्, अब क्या होगा? उस दिन फकीर ने सच ही कहा था नागिन के तो दोय फन, नारी के फन बीस। जिसको डसती है, उसका बचना कठिन हो जाता है।

कैसी चिकनी–चुपड़ी बाते कर रही थी। मैं सही में जंजाल के जाल में फँस गया जहाँ से निकलना बडा ही कठिन कार्य है आखिर समाज के लोग क्या कहते होंगे?

बड़े-बुजुर्ग की सारी बातों की अवहेलना करके मैंने ठीक नहीं किया। लोगों के समक्ष निकलूँगा कैसे? मुँह से कोई नहीं कहे, पर परोक्ष में तो खिल्ली उड़ाएँगे ही. ...। ओह, यहाँ तो जीना दूभर हो गया। अच्छा यही होगा कि पिताजी से कहकर कुछ रुपयों का प्रबन्ध कर लेता हूँ। और वहीं धनजीत के पास दूकान खोल लूँगा। अब इसी में भलाई है। आखिर ये भी तो समझेगी-विश्वासघात करने में कैसा कष्ट मिलता है। कोई भी बातें खुलकर नहीं बताई थी. मुझसे... ।

माली का मुख ही ऐसा है. जो कोई कह नहीं सकता कि यह जाल फरेबवाली औरत है। सुन्दर चेहरे पर लाज से भरी लाली फैली रहती है। काली घटा की तरह कपोल पर फैले बाल.. . ! आँखों में मदमत्त करनेवाला रस. ..। पर भीतर ही भीतर तो यह प्रपंच का समुद्र है।

खैर, बुरे कर्म का फल तो चखना ही पड़ता है। मुझे जो होगा, भोगना ही पड़ेगा। मेरी अनुपस्थिति में यह भी जान लेगी-सब कुछ... ।

नलनी घर के भीतर से झाँक रही थी। वह सोच रही थी-संजय दौड़े हुए आएँगे। और बच्चे को गोदी में उठा लेंगे। अमृतभरी वाणी से मेरे सारे कष्ट को दूर करेंगे। उसके हँसते हुए मुख को देखकर मेरा सारा दु:ख भाग जाएगा।

पर यहाँ तो वैसा कुछ भी नहीं हो रहा था। छेद से झाँककर जब उसने संजय को देखा तो मन की सोची हुई बात जैसे एकाएक विलुप्त हो गयी। न वह आत्मीयता न वह प्यार ..। न आँखों में कोई कुतूहलता.. .। कहाँ गया वह सब कुछ.....? उसके बदले तो आँखों में रोष है। मुरझाये मुख पर पश्चाताप के चिह्न हैं। क्या मेरे सुख के दिन समाप्त हो गये? अब क्या सिर्फ दुख के बादल ही बरसेंगे? उसे गीत की कुछ पंक्ति याद आने लगी-

''पिया भैल केहन कठोर है, ननदिया मोरी,
दिन-रैन चैन नहि
भोजल रहला नयनमा के कोर हे
पिया भेल केहन कठोर हे..... ।''

खैर, कुछ भी हो. मुझे जो भी दुख क्लेश मिले। मैं उसे सह लूँगी। ये तो मेरा दुर्भाग्य है। इसमें उनका क्या दोष.....? उनका मुँह सूखा हुआ देख रही हूँ। सवेर से कुछ खाये-पिये हैं कि कहीं भूखे तो नहीं है...... ?.

मैं जब चलती हूँ तो आँखों के आगे अँधियारी सी छाने लगती। कैसे खिलाऊँ इन्हें... । स्वयं इधर की ओर आते नहीं। सुभद्रा दीदी भी न जाने इस वक्त कहाँ गुम हो गयी है। कम से कम खाने को तो पूछती। पता नहीं, इतने दिनों तक भूखे-प्यासे कहाँ भटक रहे थे? सुनती हूँ-बारातियों से झगड़ा करके कहीं चले गये थे।'

सुभद्रा आती हुई दिखाई पड़ी। नलनी ने उसे इशारे से बुलाया। सुभद्रा के कान तो बात सुनने में लगे थे। पर दृष्टि नाच रही थी कभी नलनी पर तो कभी संजय पर ।

कुछ पल बाद ही वह संजय के निकट जाकर बोली–"इतने दिनो से कहाँ लापता हो गये थे? ई कहाँ का न्याय है? इधर तुम्हारा नाम लेकर घर में मरता रह, और तुम बाहर में चैन की बंशी बजाते रहो।"

संजय कुछ न बोला। सुभद्रा की आवाज पुनः उभरी–"कुछ बोलते नहीं हो। क्या खाये पीये हो कि भूखे हो? अरे, खुशी मनाओ। तुम्हारे घर में लक्ष्मी आयी है। मुँह लटकाये क्यों बैठे हो? पति-पत्नी के बीच बच्चा आ जाय तो स्नेह और बढता है न . .।"

"भाभी, मुझे भूख नहीं है।" –संजय के मुँह से धीमी आवाज निकली–"पिताजी कहाँ है? मुझे एक जरूरी कार्य है।"

"चाचाजी अभी दरवाजे पर आकर बैठे हैं। पहले खा-पी लो फिर बातें करते रहना।"

"नही-नही। मै जल्दी मे हूँ। मेरे पास समय नही है। कुछ पैसों का प्रबन्ध करना है।"

कहते हुए वह आँगन से बाहर की ओर निकल गया।

सुभद्रा की आँखो में अचरज के बादल उमड़-घुमड रहे थे। नलनी कपोल पर आये आँसू को आँचल से पोछने लगी थी।

बच्ची जोर-जोर से रोने लगी। सुभद्रा घर की ओर बढ़ गयी।

संजय पिछवाड़े की खिड़की से पत्रहीन पेड़ की ओर देख रहा था। पतझड के आगमन से पेड़ो के पुराने पत्ते झड गये थे।

ऐसा लग रहा था, जैसे दुख से भरे ठूँठे वृक्ष निरीह निगाहो से आसमान की ओर देख रहे हो....। पर कितने दिनो तक....? बसंत के आते ही उनके कष्ट का अंत हो जाएगा। कोमल किसलय पुनः उग आएँगे। मलयानिल के झोंके के साथ झूमने लगेंगे फिर पेड़....। दर्प से इठलाने लगेंगे।

किन्तु बदलेगा मौसम पुनः....। बीतेंगे सुख के दिन, फिर आएगा वही पतझड़. .।

सिरदर्द बढ जाने से वह बिछावन पर बैठ गया।

संजय ने शहर में दूकान खोल ली थी। पर अनजानी जगह, परिचयहीन लोग....। कुछ दिनो तक उसे एकाकीपन की वजह से काफी कष्ट हुआ। धीरे-धीरे पास-पड़ोस के लोगो से आत्मीयता बढ़ती गयी। मित्रों, बुजुर्गों के घटने से जो खालीपन का बोध होता था, उसकी भरपाई होने लगी। मानसपटल पर पुराने सारे आत्मीय लोगों के चित्र धुँधले पड़ते चले गये। उसकी जगह नयी आकृति पदस्थापित होने लगी।

लेकिन जब कभी पुरानी यादें नयी तसवीर बन कर उभरती तो अन्दर में टीस सा पैदा करती और एकान्त शात क्षण काटना बड़ा ही मुश्किल हो जाता है

'न जाने कैसे होंगे पिताजी? नलनी क्या सोचती होगी? चाहे जो सोचो, जैसा करेगी वैसा तो भरेगी ही। और सुभद्रा भाभी को तो कुछ भी जानकारी नहीं है। वह क्या सोचती होगी–कहती होगी, छलिया पुरुष है। मुँह में मीठी बात और अन्दर में विष भरा हुआ है।'

वह तत्क्षण सारी बातें भूल जाता, जब मुस्कुराती इठलाती गिन्नी सामने आ जाती। उसकी गम्भीरता गिन्नी की बातों के झोंकों से क्षणभर में ही उड़ जाती। और उसकी जगह हँसमुख, चंचल किशोर संजय जैसे आकर खड़ा हो जाता।

आज दोपहर से ही संजय को ज्वर आ गया था। जोड़-जोड़ में दर्द कर रहा था। पीड़ा से मन भारी था। इसलिए स्कूल से आते ही वह बेचैन हो गया था। कभी बिछावन पर सोता तो कभी टहलने लगता . .।

दुर्भाग्य से आज गिन्नी भी नहीं थी। पड़ोस में किसी सहेली के घर दोपहर में ही गयी थी। वहाँ से अभी तक लौटी नहीं। अकेले बिछावन पर सोता तो कभी टहलने लगता ...।

सूरज डूबने के साथ ही काली छाया पसरने लगी थी।

प्यास से जब उसकी अकुलाहट बढ़ जाती तो उठकर थोड़ा पानी पी लेता। फिर वह बिछावन पर करवटें बदलने लगता।

तीन कमरे का वह छोटा-सा घर था। दो कमरे में तो धनजीत और गिन्नी का आवास था। और एक खाली कमरा संजय के लिए घोसला बना हुआ था।

धनजीत ने कई बार बाहर निकल कर सड़क की ओर देखा था। पर संजय कहीं दिखाई नहीं पड़ा। उसे बड़ा अचरज हो रहा था–आखिर अभी तक आया क्या नहीं? कहीं घर तो नहीं चला गया? या स्कूल में ही किसी काम में देर हो गयी?

धनजीत की दूकान पर ग्राहकों की भीड़ अधिक थी। इसलिए उसे ज्यादा सोचने का वक्त नहीं मिला। भीड़ छँटने के साथ ही उसने जल्दी-जल्दी दूकान बन्द की। और थोड़ी ही दूर बने अपने आवास में पहुँच गया। उसने गिन्नी को आवाज दी–"अरी गिनिया। तू किधर गयी?"

कोई उत्तर नहीं मिला। पूरे घर में जैसे अँधेरे ने साम्राज्य कायम कर लिया था।

वह अपने कमरे की ओर जा ही रहा था कि पीछे से गिन्नी आती हुई दिखाई दी।

"कहाँ चली गयी थी–तुम? तुमको रोशनी भी जलाने की सुध नहीं रहती है।"

सकुचाती हुई गिन्नी बोली–"भैया! मैं जरा निरूपा के घर चली गयी थी। आप लोग तो रहते नहीं हैं। अकेले बैठे-बैठे अच्छा नहीं लगता है।"

"ठीक है, रोशनी जलाओ। संजय आया कि नहीं?"

"मैं तो तुरन्त ही आयी हूँ। मुझे क्या पता।"

रोशनी होते ही अँधेरा शीघ्रता के साथ पलायन करने लगा।

संजय के कराहने का स्वर सुनकर धनजीत चौंक उठा शीघ्रता के साथ वह संजय के कमरे में पहुँचा

"क्या हो गया–तुम्हें?"

कहते हुए उसने उसके शरीर का स्पर्श किया–"तुम्हारा शरीर तो काफी गर्म है–भाई।"

"हाँ, बुखार....। सिर में काफी दर्द हो रहा है।"–सजय के मुँह से धीमी आवाज निकली।

"तुम्हें बोलना चाहिए न। चुप्पी साधे रहोगे तो कैसे समझेंगे लोग . ?"

"किसको बताता मैं . ?" –सजय ने कराहत हुए कहा–

"कोई था ही नही। पानी पिलाओ थोड़ा।"

"अच्छा–अच्छा भिजवाता हूँ।"

कहते हुए धनजीत बाहर निकला और गिन्नी के निकट जाकर उस डॉटने लगा।

"तुम्हारे माथे मे बुद्धि है कि नहीं।"

"क्या हुआ भैया?"–शंकित होकर गिन्नी ने पूछा।

धनजीत ने उसे समझाना शुरू किया। "सजय बुखार से तड़प रहा है। माथे मे दर्द है–उसका, और तुझे पता भी नही है।"

"मैं तो घर पर थी ही नहीं।"

धनजीत ने डाँटते हुए कहा–"तुम्हे तो घूमने से फुर्सत ही नहीं। अरे, सजय जैसा अच्छा लड़का कहाँ मिलेगा? पढ़ा लिखा है, पास मे पूँजी है। दूकान काफी चलने लगी है। तुम्हें तो उसके निकट में रहना चाहिए। तुम्हारे रहते उसे कुछ कष्ट हो तो फिर.. .।"

गिन्नी के मुख पर लाज का आवरण छा गया था। वह अवाक होकर दूसरी आर देखने लगी थी। धीमी आवाज मे बोली, वह–"पर भैया वह तो . , बाद मे ..।" "अरे बाद की बात छोड़ो, अभी की सोचो। उसक पास पूँजी है और मेरे पास पूँजी का अभाव है फिर तेरी शादी में जो खर्च होगा, वह कहाँ से आएगा? वैसे सजय कोई बुरा आदमी तो है नहीं। अब मैं क्या बोलूँ। तुम अपनी बुद्धि से काम लो।"

सारी बात एक अनबुझी पहेली की तरह... । अपने भाई का एक–एक शब्द गिन्नी के कानों में सांय–सांय कर रहा था। वह धरती की ओर देखती हुई सोच रही थी–'आखिर क्या कहना चाहते हैं–भैया? संजय शादी–शुदा आदमी है। इससे पहले तो. ..। पर आज इन्हे क्या हो गया? आखिर क्या सोच रहे है ये....? कही इनकी निगाह मे रुपया–पैसा ही सबसे बडी चीज तो नहीं बन गई है? कहीं पूरी तरह स्वार्थी तो नहीं बन गये हैं. ..?'

धनजीत का फटकारभरा स्वर उभरा–"अब खड़ी–खड़ी क्या सोच रही हो? बेचारा, घर से तो झगड़कर यहाँ आया। कौन इसकी सेवा करेगा? जाओ जाओ... । प्यासा है, पानी माँग रहा था।"

गिन्नी धीरे–धीरे मन्द गति से चल पड़ी। धनजीत कुछ पल तक उसकी ओर देखता रहा उसके मुख की वक्रता बढती गयी आँखें जैसे सोच में डूबी हुई थी

निमिषभर बाद ही होठों पर कुटिल मुस्कान नाचने लगी। वह अपने आवास से बाहर की ओर निकल पड़ा।

गिन्नी जब कमरे में पहुँची तो संजय की हालत देखकर घबरा गई। सूखे होठों से वह पानी माँग रहा था। आँखों में याचना सी भरी हुई थी। गिन्नी ने उसको सहारा देकर उठाया। और जल से भरा गिलास उसके हाथ में थमा दिया।

पानी पीकर राहत की साँस लेते हुए संजय बोला–''कौन है भाई? पास आओ . .। दर्द से सर फटा जा रहा है।''

पहले की सारी बातें भूल गई थी–गिन्नी, नारी के अन्दर जो सेवा की भावना छिपी रहती है वह उमड़कर सामने आ गई. . ।

निकट बैठकर उसने सिर का स्पर्श किया। वास्तव में तवे की तरह जल रहा था–उसका माथा. . । बाम की डिबिया खोलकर वह धीरे-धीरे माथे पर मलने लगी।

दु:ख से व्यथित शरीर पर नारी के कोमल कर का स्पर्श होते ही जैसे धीरे-धीरे माथे का दर्द कम होने लगा।

संजय ने अपना हाथ बढ़ाकर गिन्नी के हाथ पर रख दिया। गर्म, कंपन भरा. हाथों का छुअन ...।

कुछ पल के लिए गिन्नी की देह में थरथराहट सी भर गयी। सब कुछ सामान्य होने लगा।

गिन्नी को भी यह अनुभव अच्छा ही लगा। वह शनैः शनैः उसके सर को सहलाती ही रही। टूटे हृदय वाले, दु:ख से व्यथित पुरुष को जब नारी का सुखद स्पर्श मिलता है तो स्वत: ही उसे अविरल चैन सा मिलने लगता है और तत्क्षण दु:ख पलायन करने लगता है।

गिन्नी के स्पर्श से संजय धीरे-धीरे नींद की गोद में डूबता चला गया। अंतत: वह स्वप्न-लोक के महासागर में विचरने लगा। और गिन्नी की आँखें संजय के मुख का अवलोकन करती रही. .।

❖ ❖ ❖

नरेश की माँ जोगनी आज दोपहर में ही खेत से लौट आयी थी। सवेरे वह जलपान करके नहीं गयी थी। बूढ़ा शरीर भूखा रहने के कारण निढाल सा हो गया था।

वह भीतर ही भीतर गुर्रा रही थी–अपनी नयी नवेली बहू शीला पर । पर शीला लापरवाह होकर अपने कार्य में व्यस्त थी। जोगनी जब अपने क्रोध को दबा नहीं पायी तो कुछ से कुछ बोलने लगी–''धी गई बहू आई, घर रह गया ठामक ठाम बड़े बड़े धनीमानी घर में भी बहू सबेरे ही उठ जाती है बरतन माँजकर चूल्हा फूँकती है झाड़ू चलाती है कपड़े साफ करती है लेकिन ई तो जैसे

राजकुमारी है। राजा की बेटी.. । इएह । आठ बजे मे उठेगी। उठकर भी घंटो बैठी रहेगी। काम के नाम पर तो अस्सी मन का बोझ माथे पर चढ़ जाता है। जैसे बाप ने लाख का लाख दिया हो, राज करने के लिए ..।''

कुछ पल तक शीला बातें सहती रही। पर जब बाप का नाम लिया तो उसके सब्र का बाँध टूट गया। फुफकार उठी वह–''रोटी तो कब से पडी हुई है, घर मे। खाने का मन नही रहता है तो उल्टे दूसरो को भला–बुरा कहती है। मै कह देती हूँ, मेरे बाप के विषय में कुछ मत बोले कोई....। मै भी कलेजे मे लगने वाली बात बोल सकती हूँ। हुँह, चोट कही, दरद कही, और इशारा कही।''

जोगनी बाहर जा रही थी। पर अपनी बहू की बातें सुनकर रुक गयी। व्यंग्य भरी आवाज में बोली–''एँ. .हे . रुआब तो देखो; जैसे मुझे ही चबा जाएगी। गलती करेगी तो बाप का नाम कैसे नही लूँगी। माँ बाप ही बच्चे को शऊर सिखाते हैं। यहाँ तो झगड़ा करने का तरीका सिखा के भेज दिया है। बात कैसे निकालती है, बरछा की तरह. .। जिसका खानदान जैसा होता है न . वह वैसा ही नगा नाच करती है।'' ''मुँह सम्हाल के बात कीजिए। अपना खानदान तो ऐसा है तो शादी के लिए कोई नहीं पूछता था। सारे लोग अभी भी हँस रहे है। कहते हैं–एक पत्नी को छोड़ता है और दूसरी को लाता है।''

जोगनी की आँखों से जैसे चिनगारी निकलने लगी। पहले से ही मन चढ़ा–बढा था उस बहू को जो कहती थी, आराम से सह लेती थी। उसके मन मे विचार उठा–आज समय है, अभी दो–चार तमाचा खींच दूँगी तो सब दिन याद रखेगी। अगर छोड़ देती हूँ तो ऐसे ही सिर पर चढ के बोलेगी। बेटी–पतोहू को जितना दबा के रखा जाय उतना ही अच्छा है।

चमककर बुढ़िया आगे गयी। और शीला को धकियाती हुई बोली–''पूछने वाला तो कोई था ही नहीं। जनम कुँआरी बन के बैठी रहती। भाग मनाओ, जो मेरा बेटा माँग मे सिन्दूर भर दिया नहीं तो किसी निखट्टू गँवार के पल्ले पड़ती। मुँह तो देखो चण्डालिन का. . । अब जो बोलेगी तो मुँह फोड दूँगी।''

कहते हुए उसने हाथ की ठोकर उसके मुँह पर लगा दी।

शीला जैसे क्रोध से काँपने लगी। जवान होने के बाद से उसने किसी से मार नहीं खायी थी। समाज में गलती करने के बावजूद भी कोई उसे कुछ नहीं कहते थे। क्योंकि उसके भाई देवा से सारे लोग भयभीत थे। वह छोटी सी बात पर खून खराबा करने के लिए तैयार हो जाता था।

आज पहली बार दूसरे के हाथों उसे मार खानी पड़ी थी। क्रोध के कारण उसकी आवाज में कँप कँपी भर गयी। सर्पनी की तरह फुफकारती हुई बोली–''क्या हो कोई गदहा है इधर? तू मारती रहोगी तो मैं कैसे सहती रहूँगी? अब अगर

बुढ़िया फुफकारती हुई पुनः तमाचा उठायी.. । "करमजली! क्या तू भी मारेगी? ले मार .. । देखती हूँ तेरी माँ ने कितना दूध पिलाकर यहाँ भेजा है।"

कहती हुई वह तमककर निकट चली गई। शीला गुर्राती हुई बोली–"अब अगर हाथ उठाया.. तो कंठ पकड़कर तोड़ दूंगी।"

"ले ले पकड़ ...। मार न तू, देखती हूँ।"

कहती हुई उसने तमाचा गाल पर बैठा दिया। शीला तो क्रोध में जैसे अँधी हो गई। लपककर बुढ़िया की गरदन पकड़ ली। और जोर से दिवाल की तरफ धकेल दिया।

जोगनी को ऐसी आशा नहीं थी। इसलिए वह सम्हल न पाई। लड़खड़ाकर मुँह के बल दीवाल से जा टकराई। कमजोर दाँत चोट नही सहन के कारण टूट गये। मुँह से खून का फब्बारा-सा फूटने लगा। समझ गई थी जोगनी....। अब यह नही छोड़ने वाली है। इसलिए नाटक पसार कर रोने कलपने लगी, फिर रो-रोकर गाने लगी–

"कैसे निरवंशा बेटी के घर ले अयली गे।
मार-मार के रकत बहा देली गे।।
छिनाल, कलमुँही सतखलाड़ी गे।
घाट-घाट के पानी पी के।।
तू हमार घर अयली गे।
नाहक मे सतवरती के भगा दयली गे।।
सोना बदल के टलहा ले अयली गे ...।

अब कुछ न कुछ लंका काण्ड जरूर होगा। बात बहुत आगे बढ़ गयी है। मार भी पड़ सकती है। घर से निकाल बाहर भी .। यहाँ तो सिर्फ इन्हीं के पक्षधर है। कुछ न कुछ उपाय सोचना है।

शीला शीघ्रता के साथ घर के भीतर चली गयी। अपनी सारी चीज डोलची के अन्दर रख ली। फिर तेजी के साथ बुढ़िया के समीप आकर बोली–"ई नाटक क्यो पसारती हो? मै चली ही जाती हूँ। अब आजाद होकर रहना, पूरी जगह खाली .। कह देना, अपने बेटे को–छिनाल थी, इसलिए मैंने उसे भगा दिया।"

कह कर वह आगे बढने लगी। फिर रुक कर बोली–"ई मत समझना कि पहली पतोहू की तरह मैं सीध छोड़ दूँगी। मेरा भाई जब सुनेगा तो बाप से मुलाकात करवा देगा। और मैं जाऊँगी, दरोगा जी के पास ...। पुलिसीया डंडा जब मुँह मे कोचेगा तब पता चलेगा। जा रही हूँ, मै....।"

बुढ़िया रोती-कलपती रह गई। और शीला तेजी के साथ निकल गई।

तीक्ष्ण धूप नीम के पत्ते को भेद रही थी। काले कौवे डाली पर फुदकते हुए 'काँव काँव' कर रहे थे

❖ ❖ ❖

रात्रि ने प्रगल्भता को प्राप्त कर लिया था। लग रहा था जैसे सम्पूर्ण संसार सन्नाटे में डूब गया हो।

कुछ घंटे पहले ही सोमनाथ घर लौटा था, ननिहाल से .। उस दिन जो रात में घटना घटी, उसके दूसरे दिन ही वह सबेरे घर से निकल गया था। मन में बात तो कुछ और थी, लेकिन बहाना कुछ और ...।

महीने भर का समय वह ननिहाल में व्यतीत कर चुका था। पारिवारिक सारा कार्य अस्त व्यस्त हो चला था। पर उसे जैसे किसी बात की चिन्ता ही नहीं थी।

अन्तरात्मा की चोट से व्यक्ति तिलमिला उठता है। उस वक्त अगर विवेक से काम नहीं किया, तो निश्चय ही वह बुरे साहबत में फँस जाता है।

यौवनावस्था तो स्वयं उन्मादी होती ही है, बेलगाम ...। अर्द्धपागल घोड़े की तरह ..। अगर बुद्धि का लगाम नहीं लगायी जाय तो वह किस ओर दौड़ पड़ेगी। क्षणिक आँधी उसे किस ओर बहा ले जाएगी पता नहीं . ।

सोमनाथ जवान था उसे पैसों की कमी नहीं थी। वैसे इस घटना से पूर्व वह एक सुहृदय, सच्चे इन्सान के रूप में जीना चाहता था। पर इस आन्तरिक आघात् ने उसे पूरी तरह झकझोर दिया। अन्तरात्मा में सोया हुआ दानव एकाएक उठकर खड़ा हो गया था। उसे दारू की लत् लग गयी थी। इलाके में जितने भी बुरे किस्म के लोग थे, उनसे सम्पर्क बढ़ता चला गया था।

लेकिन जितना वह नशे के द्वारा सारी घटना को भुलाने का यत्न करता उतनी ही प्रचंडता के साथ सारी बातें उसके मानसपटल पर नाचने लगती। और अन्दर से बदले की भावना हुँकार उठती।

जगदीशवा का आज भाग्य अच्छा था, जो कान्ती से मिलने नहीं आया। अगर आता तो कुछ न कुछ घटना घट गयी रहती....।

अधरतिया में सभी सोये हुए थे। पर सोमनाथ की आँखों से जैसे नींद की दुश्मनी हो गयी थी। वह जब से आया था तब से एक भी बार कान्ती से नहीं बोला था। चोर की दाढ़ी में तिनका. . ।

कान्ती भी सोने का मात्र बहाना कर रही थी। पर वह बन्द आँखों से ही सोमनाथ के उठने बैठने का अंदाजा लगा रही थी। कुछ पल तक सोमनाथ सोने का नाटक करता रहा।

उसके बाद वह बाहर निकल गया। ओसारे पर बैठकर उसने दारू की बोतल खोली और गटा-गट कई घूँट पीता गया। फिर उसने कोने में रखी हुई कुदाली उठायी और पिछवाड़े की ओर बढ़ गया।

दरवाजे के छिद्र से कांती सारी बात देख रही थी न जाने उसके मन में क्या बात आयी वह बढ़कर खूँटी पर लटके सोमनाथ के झोला को टटोलने लगी

उसके पूरे शरीर में पसीना टप-टप चूने लगा। थरथराहट भर गयी-देह में . ।

"अरे बाप रे! इतनी बड़ी तरवारि किस लिए झोला में रखा है? रत्-रत करता हुआ.. । जिस पर चलेगी ओ तो एक ही बार में साफ. । छपाक. . । कहीं. । मेरा ही तो गला नहीं काटेगा? गे माई गे ...।"

कुदाल चलाने का स्वर सुनकर वह बेशब्द दौड़कर बाहर आई। और झाँककर देखने लगी। सोमनाथ पिछवाड़े में कुदाल चला रहा था।

'हुँह.. .हुँह ...हुँ . ।' का स्वर उसके मुँह से निकल रहा था।

'ई चण्डलवा गड्ढा काहे खोद रहा है? गे माई गे माई। लगता है मुझे ही काटेगा....। अब क्या करूँ? हे भगवान. . ।'

विपद-काल में बुरे चरित्र वाला भी ईश्वर का सुमिरन करने लगता है, पर आपदा टलते ही पुन. पूर्ववत टेढ़ी चाल से चलने लगता है।

विस्मित होकर कांती कुछ पल तक देखती रही। भय से वह स्तम्भित हो उठी थी। किंकर्तव्य विमूढ़ावस्था .. ।

माँ को जगा देती हूँ। कुछ न कुछ उपाय निकल आएगा। उल्टे पैर वह भागी।

"माँ ...माँ ऽऽ. ..।" जोर से चिल्लायी-"उठिये जल्दी....। कहती हूँ मैं जल्दी उठिये।"

"झड़ाक" किवाड़ खुला। रामेसरी की घबराहटयुक्त आवाज निकली-"क्या है बहू ..? क्यों चिल्ला रही हो?"

कम्पनभरे स्वर में कांती बोली-"आपका बेटा पागल हो गया। ताड़ी-दारू पी के बेमत हो गया है। देखिये, पिछवाड़े में गड्ढा खोद रहा है।"

रामेसरी तेजी के साथ पिछवाड़े की ओर जाने लगी। पर कांती ने झपटकर उसकी बाँहें पकड़ ली-"आप उधर कहाँ जा रही है? वे अभी कुछ नहीं सुनेंगे। उसके सिर पर खून सवार है। इधर आइये, देखिये-झोला में कितना बड़ा खाँड़ा छिपा कर रखा है।"

"तो क्या हुआ?" रामेसरी के मुख पर अचरज का भाव था। "वह मुझे काट देगा, और गड्ढा में दफना देगा। मुझे बचाइये माँ जी। नहीं तो अब मेरी जान बचना मुश्किल है।"

वह हिचक-हिचक कर रोने लगी। रामेसरी का हृदय पिघल उठा-"ठहरो बहू! मैं कोई न कोई उपाय निकालती हूँ। किसी को बुलाती हूँ-मैं।"

"नहीं नहीं माँ! अच्छा होगा, मुझे चुपके से निकाल दीजिए। अगर जान लेगा तो मेरा प्राण बचना कठिन हो जाएगा।"

कहाँ निकाल दूँ? किसके साथ कहाँ जाओगी?

"मैं नेहर भाग जाती हूँ-माँ।"

"इतनी रात को अकेले कैसे जाएगी तू? इतनी दूर का सफ़र....।"

"मैं . मैं जगदीश को साथ करके निकल जाती हूँ। आप इधर सम्हालियेगा।"

उसकी आवाज में हकलाहट भर गई थी। और पैर में कम्पन . .।

फिर भी वह तेजी के साथ आँगन म भागी। रामसरी कुछ कहना चाहती थी पर काती रुकी नही। वह तेजी क साथ निकल गयी।

रामसरी लाचार-सा वहीं खड़ी रह गयी।

सोचने लगी वह-'सच ही कहते थे, उस दिन साधू। शायद मेरे घर पर शनि की कुदृष्टि पड़ गयी है। आखिर ऐसा था तो नही मेरा बेटा. । इसके मन मे कौन सी ऐसी हलचल उठी जो वह एकाएक चण्डाल बन गया, राक्षस बन गया। खून भी कर सकता है। कौन सी एसी गुप्त बात है, जिसे जानकर वह पागलपन की हद स आगे बढ़ गया है।

कहीं वो भ्रम का शिकार तो नहीं हो गया, जिसके कारण इसके दिमाग का सतुलन बिगड़ गया है। खैर कुछ भी हो, हत्या बहुत बडा महापाप है। उसमें नारी हत्या.. । भयंकर पाप।

सोमनाथ घर मे ढूंढने गया पर काती नही मिली। वह हाथ में खंजर लिए बाहर निकला, और माँ के निकट जाकर पूछा-"तेरी कुलक्षणी बहू कहाँ है माँ? किधर छिप गयी है। वो?"

चकित होकर कुछ पल देखती रही रामसरी। फिर बोली-"बेटा, आखिर क्या हो गया है-तुझे?" "कुछ नहीं। मैं पूछता हूँ-कहाँ है वह छिनाल? आज मैं उसे काट कर गाड़ दूँगा।"

आखिर बेटा था, रामसरी का। इसीलिए वह घबराई नही. ..। शान्त स्वर मे बोली-"क्रोध मे लोग पागल हो जाते है। नशेबाज का अन्दर-बाहर सब बर्बाद हो जाता है। तुम तो नशे मे हो और क्रोध में भी....। शान्त हो जाओ बेटे। आखिर किसको मारने जा रहे हो? वह तुम्हारी ही तो पत्नी है। अर झगड़े ऐसे ही हुआ करते हैं। इसका मतलब ये तो नही कि सर्वनाश ही कर दिया जाय।"

"वह मेरी पत्नी नहीं है-माँ वह तो डायन है, जो मुझे भी खा जाएगी ओर मेरे खानदान को भी....। तुमको क्या लगता है मैं पागल हूँ? मैं जो कुछ कर रहा हूँ, सोच समझकर कर रहा हूँ। सारी बात जानोगी न, तब समझोगी।"

"कहोगे नहीं तो समझूँगी-कैसे?"

क्या करोगी तुम ? उस कलमुँही ने तो तेरी आँखों पर पट्टी

रामसरी ने बेटे की बाँहे पकड़ ली और झकझोरते हुए बोली–"तुझे कहना पड़ेगा, आज सब कुछ खोलकर . ।"

झटककर अपनी बाँह छुड़ाते हुए सोमनाथ ने कहा–"तो सुनो, तुम्हारी बहू छिनाल है। वह जगदीशवा से फँसी हुई है। नलनी निर्दोष थी माँ। उस तुम्हारी बहू ने झूठ घर से बेघर कर दिया। आजकल भी वह जगदीशवा के साथ रात-रात भर तुम्हारे ही घर में आकर रंग रेलियाँ मनाती है। मैंने अपनी आँखों से देखा है।"

रामसरी अवाक् होकर सोमनाथ की ओर देखने लगी....। कुछ पल बाद उसकी आँखों से आँसू झरने लगे। रोती हुई बोली वह–"उसने तो मुझे झाँसा दिया बेटे... । अभी भी जगदीशवा के साथ वह नैहर की ओर भागी है, मुझसे बहाना बनाकर. ..।"

फिर वह रोने लगी। गरजते हुए दौड़ पड़ा सोमनाथ–"आज उसे मैं छोड़ूँगा नही.. ।"

पर अब क्या होने वाला था। कादी तो जगदीशवा के साथ दूर बहुत दूर निकल चुकी थी।

पिंजरे मे बन्द चोट खाये शेर की तरह दहाड़ता रह गया था, सोमनाथ.. ।

सुनसान रात्रि में उसकी आवाज दूर-दूर तक प्रतिध्वनित हो रही थी।

❖ ❖ ❖

सुभद्रा तेजी के साथ नलनी के आँगन की ओर जा रही थी। ज्योंही वह नलनी के दरवाजे की ओर मुड़ी कि शीला दिखाई पड़ गई।

"अरी शीलू! कब आई तू? सासुर मे अच्छा नही लगा क्या?"

"कल ही तो आयी हूँ–भाभी! अपने गाँव जैसा दूसरा गाँव कहाँ मिलेगा।"

"अच्छा-अच्छा! सब ऐसे ही अपने नैहर की बड़ाई करते है। ई कहा–सास कैसी है तुम्हारी? मानती है कि नहीं?"

शीला के चेहरे पर विचित्र भाव उभर आये थे। "अब क्या बताऊँ–भाभी! ऐसी झगडालू बुढ़िया तो मैंने कही देखी नही। बात-बात पर झगड़ने के लिए तैयार....। जैसा बिना लड़े-झगड़े अन्न ही नही पचता।"

सुभद्रा के मुख से संदेहभरी वाणी उभरी–ऐं ऽ . ऐसी बात है। कहीं तुम झगड के तो नही आयी हो?"

"हाँ भाभी! यही समझो। झगड़ ही नही, दो दाँत तोड़ कर आयी हूँ।"

सुभद्रा की आँखे विस्मय से फैल गयी थी। "हाँ तो इस बार पाला पड़ गया। मै तो पहले ही समझती थी कि नलनी जैसी भोली और सुन्दर औरत....। इसमें तो कोई दोष है नहीं। निश्चय ही ससुराल वाले उसके संग अच्छा बरताव नही रखते होंगे तब न बेचारी लाचार होकर .. ।"

तुम ठीक कहती हो भाभी उस आँगन के सब लोग एक ही जैसे हैं पर

हाँ, मेरा भी नाम शीलू है। ठीक कर दूँगी-सबको. ..। सिर्फ भैया साथ देते रहे तो दिखा दूँगी।" "हाँ, वह भी जरूरी है। ऐसे-ऐसे लोग अगर रहेंगे तो नलनी जैसी औरत चक्की में पीसी जाएगी। अब देखो न, बेचारी बचेगी कि मरेगी कोई ठिकाना नही।" "क्यों- क्या हुआ उसे?"

"अरी, उसके ऊपर तो दुखों का पहाड टूट पडा। विधाता ने वज्र गिरा दिया-उस पर ..।"

"आखिर हुआ क्या उसे?" -प्रश्नभरी निगाह से शीलू घूरने लगी।

लम्बी साँस छोड़ती हुई सुभद्रा बोली-"ईश्वर ने उससे राजा हरिश्चन्द्र की तरह जाँच लेनी शुरू कर दी। मास दिन से दोनो पैर काम नहीं कर रह है। बेचारी न उठ सकती न बैठ सकती है। ऊपर से नन्हा-सा बच्चा ...। फिर सारा काम-काज। आ तो दिन-दिन घुलती जा रही है।"

"क्यों सजय भाई कहाँ है?"

"अरी उसकी तो बात ही मत पूछो। तुम्हारी शादी मे जो उनसे झगड़ा हुआ। शायद नलनी के बारे में क्या-क्या कहा। मन, दिल टूट गया, इस घर से. । सब मोह तज के चला गया।"

"आखिर कहाँ गये?"

"कुछ जमीन बेचकर ले गये। और नरहिया बाजार मे दूकान खोल ली है। पत्नी की ऐसी दुर्दशा, बच्चे की ऐसी हालत.. .। सवाद पर संवाद भेज रही हूँ। लेकिन कभी झाँकने तक को नही आया। बेचारी नलनी कही की न रही। शरीर में कष्ट ऊपर से वियोग का दर्द. ..। अब तुम्ही सोचो कैसे बचेगी वह?"

"तो तुम वहीं जा रही हो-भाभी?"

"हाँ, क्या करूँ। अगर उसे नहीं सम्हालूँ, भोजन समय पर नहीं दूँ तो बेचारी चार दिन में ही भगवान को प्यारी हो जाएगी।"

"चलो, मैं भी चलूँगी-तुम्हारे साथ....। आखिर मेरे ही कारण उसकी ऐसी दशा हुई।"

"नही-नहीं, ऐसा क्यों सोचती हो ...।"

दोनों बढते हुए नलनी के आँगन में पहुँच गयी थीं।

नलनी मैले कपडे में ओसारे पर पड़ी हुई थी। बच्चा भूख से रो रहा था। पर दूध हो तब न पिलावे। एक तो बीमारी ऊपर से अन्न का अभाव ..।

लग रहा था-जैसे गुलाब का पुष्प टहनी से टूट कर पूरी तरह मुरझा गया हो। लाली विहीन कपोल अन्दर की ओर धँसने को सन्नद्ध....। काले घेरे सुन्दर नयन को अपनी अँकबार मे लिए! आँखों की कोर से बहते आँसू में निमज्जित। धीरे-धीरे थपकी देकर वह बच्चे को सुलाना चाहती थी। सुरीले गान से बच्चे का रोना बन्द हो गया था। फिर भी वह गा रही थी, सुध बुध खोकर....।

जाहि बाट हरि अयला
दबिया जनमि गेला

से आहो उद्धो .
बटिया जोहत दिनमा जाय हो।
अपनो नहि आबे हरि
चिठिया नहि भेजइ
से आहा उद्धो. ..।
रहिया जोहत छतिया फाटै हो राम. . ।''

कुछ क्षण तक शीला और सुभद्रा देखती रहीं. सुनती रहीं.. ..। खैर सुभद्रा तो अभ्यस्त हो गई थी ऐसी बात को देखते-देखते। पर शीला के लिए ये सारी बाते नयी थीं। करुणा से उसका मन विगलित हो उठा। आँख गीली हो गयी। अवरुद्ध कंठ से बोली वह-''भाभी....।''

और गीत एकाएक बन्द हो गया। जैसे वीणा से निकलती रागिनी तार टूट जाने के कारण एकाएक बिखर गई हो। नीर से भरी नलनी की बोझिल पलके उठी। अचरज में डूब कर देखती रही, कुछ पल तक ..।

बहते आँसू को पोछती हुई नलनी बोली-''आओ, बैठो दीदी।''

फिर उसकी प्रश्नभरी निगाह शीला पर ठहर गयी।

सुभद्रा उसके मन की बात समझ गयी। वह बोली-''ये शीला है-नलनी। जिसके बारे में मैंने तुम्हें बता दिया था ..। तुम्हारे पहले पति का. ..।''

नलनी ने उसकी ओर देखा तो आँखें बरबस ही बरस पड़ी। होठों में कम्पन । शीला अपनी आँखों में आये आँसू को पोछती हुई बोली-''तुम्हारे ऊपर जो दु:खों का पहाड गिरा उसके लिए मैं दोषिन हूँ-भाभी।''

''न न, ऐसी बात मत कहना। लड़की की क्या कमी है? कोई शादी करने के लिए तैयार हो जाती।''

''मैं तो अपने भाग्य को दोष देती हूँ। उस समय अपनी माँ की बात नहीं मानी, मौसी की एक न सुनी। आखिर यौवन का आवेश .. ।''

शीला उसकी बात काटती हुई बोली-''तुम बेकार अपने भाग्य को कोसती हो। औरते तो इसलिए पीड़ित और प्रताड़ित है, क्योंकि वे भाग्य भरोसे जीती हैं। तुम तो पत्नी थी, उसकी भाभी। तुम्हारा हक था, आधे अंग की मालकिन थी-तुम। अर्द्धांगिनी.. .। क्या तुम्हारा आधा अंग कोई काटने लगे तो उसे छोड दोगी। पर तुमने तो छोड़ दिया। इसलिए कष्ट भोगती हुई जी रही हो।''

''तो क्या करती मै? एक अबला नारी कर ही क्या सकती है। तुम्हारे तो माँ-बाप जैसा भाई है। पर मेरा कौन था, इस दुनियाँ में? इसलिए न पंखविहीन चिड़िया की तरह उस दिन भी छटपटा रही थी और आज भी तड़प रही हूँ। सबै सहायक सबल के, कोई न निरबल सहाय।''

''कौन है निरबल? उसी कोख से पुरुष पैदा होते हैं तो वे सबल हो गये।

और नारी पैदा हो तो वह अबला हो जाय।"-हँसती हुई बोली वह-"अपने-अपने सोच का फर्क है। यही नारी कभी दुर्गा बनी थी। कभी लक्ष्मीबाई बनकर रणक्षेत्र में कूद पड़ी थी।"

"पर सब तो वैसा नहीं कर सकती हैं-शीलू?"

"भाभी, तुम बहुत भोली हो। आजकल के षडयंत्र से अपरिचित ...। छल कपट से दूर। अरी इतना भोलापन किस काम का. ..। जो जिन्दगी को ही ले डूबे।"

"कहने और करने में बहुत अन्तर होता है-शीलू।"

"क्या अन्तर होगा-भाभी? करने वाला चाहिए।"-लम्बी साँस छोड़ती हुई वह आगे बोली-"खैर, तुम से नहीं हुआ, मैं करके दिखाऊँगी। उसे समझा दूँगी कि औरत क्या चीज होती है। तुम्हारे एक-एक कष्ट का बदला लूँगी-मैं। उससे और उसकी माँ से ...।"

क्रोध से शीलू का मुख तमतमा उठा। "नहीं नहीं बहना! ऐसा क्यों कहती हो ऐसा मत करना। मैं तो तबाह-बरबाद हो ही चुकी हूँ। मेरी बात मानो तो अपनी जिन्दगी को मत बिगाड़ो।"

"हूँह, जिन्दगी बर्बाद कर देगा। उसकी ये मजाल. ..। उसकी ये हिम्मत। क्या मैं कोई लाजवन्ती का पौधा हूँ? छूआ और सिकुड़ गया. .। कंटीली झाड़ी हूँ मैं। समझ लो भाभी! जो भी स्पर्श करेगा ...।"

"देखो शीलू, पति पत्नी का सम्बन्ध प्रेम के आधार पर मजबूत होता है। उसे विश्वास के जल से सींचना चाहिए।" "छोड़ो भी, जो मुझे प्रेम करेगा, मैं भी उसे प्रेम दूँगी। जो मुझसे घृणा करेगा-उसे ऐसी ठोकर दूँगी कि जिन्दगी भर याद रखेगा।"

वह तेजी के साथ चल पड़ी। नलनी रोकने की असफल चेष्टा करती ही रह गयी। उसकी आँखों से अवशता के आँसू ढरकने लगे।

सुभद्रा आँसू पोंछती हुई बोली-"धीरज धरो नलनी। कैसी दशा हो गयी है-तेरी। फूल सी कोमल देह कोयले जैसी काली हो गयी है। अपने आप को सम्हालो, नहीं तो....।"

"तुम तो बेकार चिन्तित हो रही हो-दीदी। मैं तो पहले जैसी अब भी हूँ। कोई परिवर्तन नहीं हुआ है-मुझमें।"

"अच्छा!" -सुभद्रा के स्वर में व्यंग्य था। वह तेजी से दर्पण ले आयी और नलनी के हाथ में थमा दिया। फिर बोली-"खुद देख लो, तेरी काया कैसी हो गयी है।"

दर्पण में अपनी ही परछाईं को देखकर नलनी विस्मित हो उठी अपना ही

मुख बेगाना और वीभत्स सा लगा .. । उसने झुझलाकर आईने को पटक दिया। आईना कई जगह दरक गया .। पर हर एक मे उसकी छाया झॉक रही थी। लग रहा था–प्रत्येक खण्ड में उसकी दु:खद कथा थिर हो।

नलनी टूटे आईने की ओर देखती हुई बोल पडी–''दीदी। मेरा जीवन भी इसी आईने की तरह दरक गया है। जिसका कोई मोल नहीं। अगर इसके नुकीले टुकड़े को ठीक ढंग से नहीं फेका जाय तो किसी को भी चुभ सकता है। बेशुमार पीड़ा दे सकता है....। ठीक मेरी तरह! जहाँ जाती हूँ, व्यथा की सरिता साथ चली जाती है।''

हथेली से मुँह ढककर वह फफक-फफक कर रोने लगी। सुभद्रा उसके ऑसू को पाछती हुई बोली–''तुम तो सिर्फ अपने ही बारे मे सोचती हो। कभी दुनियाँ के बारे में सोचा है? कभी मेरी व्यथा को सुना है? तुझे तो आस भी है कि आज न कल तेरे पिया मिलेंगे, लेकिन मैं कितना कठजीव हूँ? मेरी जिन्दगी मे निराशा के अलावा क्या है? सच मे दरका हुआ आईना की तरह तो मेरा जीवन है–जो कभी जुड नहीं सकती। फिर भी मैं विश्वास क साथ जी रही हूँ। अपने बच्च के लिए सघर्ष कर रही हूँ और एक तुम हो जो.. ।''

सुभद्रा अपनी गीली ऑखों को पोछने लगी। और नलनी विचारो के सागर मे डूब गयी।

❖ ❖ ❖

नरेश अपने श्वसुर के दरवाजे पर कुछ देर पहले से बैठा हुआ था। उसका अन्तर मन क्रोध से भारी था। सिर्फ औरतों की कानाफूसी आँगन मे हो रही थी।

सहसा देवा का पडोसी काना बुझाबन आता दिखाई पडा। उसके हाथ मे लोटा भर जल था, लोटा रखते हुए बुझाबन ने नरेश से कहा–''मेहमान जी! पहल पैर धो लीजिए। और लीजिए, स्वागत में सुपारी हाजिर. .।''

बुझाबन सुपारी देने लगा तो नरेश ने हाथ झटक दिया और बोला–''मेरे तो करम फूट गये जो ऐसी लड़की से ब्याह हुआ।''

बुझाबन चौंकते हुए बोला–''ऐं, उल्टे मार-पीट कर भगा दिये हैं, और ऊपर से गरम हो रहे हैं।''

नरेश ने संदेहभरे स्वर में पूछा–''किसने मारा? कौन बोल रहा था?''

बुझाबन ने चट से उत्तर दिया–''शीला अपने भाई देबा से कह रही थी कि आपका खानदान खराब है। आपलोगों को बहू छाड़ने की आदत है।'' ''और देबा ने अपनी बहन पर विश्वास कर लिया?

बुझाबन आँगन की ओर जाते हुए बोला ''कैसे विश्वास नहीं करता आखिर मार खाकर रोती कलपती आयी थी

अकेले नरेश क्रोध से अकुलाते हुए सोचने लगा। 'साली ने उल्टे मेरी म
मार-मार कर दो दाँत तोड़ दिये। और भागकर यहाँ आयी तो दूसरी ही बात
बड़ी चालबाज़ है, ससुरी के. . । किस तरह का नाटक किया जा
दिमाग पर बातें बैठ गयीं। तब न फड़कते हुए देबा गया था, मेरे माँ-बाप क
भला-बुरा कहा....। और कानूनी दाँव पेच दिखाकर रोब भी जमाया। साल
अपने को समझता क्या है।

मैं भी आखिर मर्द का बच्चा हूँ पर एक बात तो जरूर है कि साल
नम्बर का बदमाश है। कहीं जो कह रहा है, उसे सच कर दिखाया तब तो मे
का नहीं रहूँगा। घर से बेघर कर देगा। तहस-नहस कर देगा, मेरे परिवार को
तो अच्छा है कि समझौता के स्तर पर ही ...। हाँ यही अच्छा होगा.. .।

पिताजी ठीक ही कहा करते थे-खानदान तो ऊपरी दिखावा है। भी
क्या है-कौन जाने....? खीरा, तरबूजा तो है नहीं कि फाड़ कर देख लिया ज

गाँव के लोग भी ठीक कह रहे थे-एक किया तो छोड़ रहे हो। अगर
औरत उसमें भी बदचलन निकली तब क्या करोगे?

ओह हो. ..। भई गति-साँप छछून्दर केरि. ..। तब न उस दिन सांती
जी कह रहे थे-

'जोरू जूठन जगत की भले बुरे के बीच।
उत्तम सों अलगा रहें मिलि खेले सा नीच।।'

शीघ्रता के साथ कहीं से देबा आता हुआ दिखाई पड़ा। नरेश को
याद आ गयी जो देबा ने उसकी माँ से कही थी। उसके मुखमडल पर घृणा
सी दौड़ गयी। दिल में तो विचार उठा कि अभी ही बकवाद कर ले। ह
फिर स्मरण हुआ-'आखिर इसके दरवाजे पर हूँ....। साला बचपन से ही
में रहा है।

जो इन्सानियत को छोड़कर हैवानियत का रास्ता पकड़ लेत
सम्बन्ध जोड़ते और तोड़ते एक पल भी नहीं लगता। हो सकता है,
कदम उठा दे, आँखें देख रहा हूँ-लाल-लाल हैं। शायद, नशा पीकर
कहीं कोई अपशब्द बोल दे, झगड़ा पर उतारू हो जाय तो मेरी ही प्रतिष्ठा

ऐसा सोचकर उसने मन में उठते विचार के आवेश को दबा लिया,
पर से उसके अवशेष को हटा न पाया।

देबा निकट आकर बोला-"कहिये, अच्छे तो हैं? मुँह काहे मधुम
जैसा लटका हुआ है? अरे, एक तो फूल जैसी बहन को पीट-पाट कर
और स्वयं ऊपर से नखरा दिखा रहे हो।"

नरेश से न रहा गया, उसे बोलना ही पड़ा-"यही तो खामियाँ हैं
किसी भी बात को दोनों ओर से सोचना चाहिए। एक तरफ की बात सु
आग बबूला हो उठे आखिर मूर्खाधिराज

''ओ तो मे मूर्खाधिराज हूँ।'' -गुस्सा धीरे-धीरे ऊपर की ओर चढने लगा-''तुम क्या अपने को बहुत विद्वान समझते हो? अहा हा. . । विद्वान लोग ही तो पत्नी का पीटते है। भलमानस बनकर जीना चाहते हो तो बहन के संग सही सलूक के साथ रहो, वरना.. । समझ लो, मेरा नाम देवा है। कानून तो जो सजा देगा, बाद मे....। मैं अपने हाथों से भी दण्ड देना जानता हूँ।''

आखिर नरेश को जिस बात का डर था, उसे आगत जानकर उसने चुप्पी साध ली। निमिष भर बाद वह सयत स्वर मे बोला-''भाई साहब। पति-पत्नी का रिश्ता बडी ही नाजुक डाली पर टिका रहता है। जरा सी बातो की आँधी आयी और वह हिलने-डुलने लगता है मैं ज्यादा नही कहना चाहता पर इतना तो जरूर कहूँगा, जो बाते हो गयी उसे सम्हालने के लिए मैं यहाँ पहुँचा हूँ। इसके लिए मुझे मौका दें तो अच्छा होगा।

देवा को भी इस शादी में बडी कठिनाई उपस्थित हुई थी। इसलिए अपने बिगडे स्वभाव को दबाकर बोला-''अच्छा-अच्छा, तो मैं भी कहाँ कहता हूँ कि सम्बन्ध तोड़ ही दो। पर अपने विचार मे थोड़ा सा परिवर्तन लाओ। सुधारो... ।''

अपनी बात का असर होते देख नरेश बोला-इसी के लिए तो आया हूँ-भाई साहब। आप शात रहिए, सब कुछ ठीक हो जाएगा।''

''ठीक है, मै गॉव पर जा रहा हूँ। थोडा काम है। अभी तो शायद शीलू अकेली ऑगन मे है।''

फिर उसने ऊँची आवाज मे कहा-''अरी शीला ऽऽ.. .। मेहमान द्वार पर बठा है। जरा जल्दी भोजन बना देना। मैं कुछ देर बाद लौटूँगा।''

और वह गॉव की ओर चल पडा। शीला को जानकारी थी कि उसके पति दरवाजे पर बैठे हैं। पर वह अनजान बनकर घर मे दुबकी हुई थी, जिससे पति का अपमानबोध हो। लेकिन जब अपने भाई की ऊँची आवाज सुनी तो विवश होकर बाहर आई।

नरेश उसे विचित्र निगाह से घूर रहा था। लेकिन शीला की ऑखो में व्यंग्य की कटारी थी। उसने एक बार नजरें उठायी, और पुनः मुड़कर ऑगन की ओर जाने लगी।

नरेश ने कठोर स्वर में कहा-''सुनो महारानी। एक तो स्वयं गलती करके आयी हो, और ऊपर से शान दिखा रही हो।''

शीला मुड़कर बोली-''मैंने कोई गलती नहीं की। मेरे साथ जैसा सुलूक किया जाएगा, उसका जवाब मैं दूँगी ही ...।''

''अच्छा. ..।'' नरेश का स्वर व्यंग्य से भर उठा-''तो कहाँ तुम्हारा हाथ-पैर तोड़ दिया है? कौन-सा दाँत टूटा है? जरा मै भी तो देखूँ।''

''मैंने भी किसी का दॉत नही तोडा। वह अपने मे गिर पडी। कोई मारता रहे और मै देखती रहूँ, ऐसा सम्भव नही है।'' ''तो इसका मतलब मेरी माँ पगली है? वह अपने आप तुझे मारने लगी' इएह अपनी गलती के विषय में तो बोलती नही हो और

शीला की आवाज मे कठोरता भर गयी–"कोई दिनभर मुझे काम करने क लिए कहती रहे और जब आराम करते देखे तो जले। मैं मशीन थोड़े हूँ।"

"मशीन नहीं हो, फिर भी घर का काम तो करना ही पड़ेगा।" "कोई निरी मूर्ख नहो हूँ, समझती हूँ–सब कुछ। पर काम भी करो और जूता लात खाओ। तब तो मैं जवाब दूँगा ही। चाहे आगे जो कुछ हो जाय।"

"समझा-समझा....। उधर तू माँ का मुँह फाड़कर आयी हो, और इधर आकर सबको बता दिया कि मुझे ही पीटा गया है। अरी, ई नाटक करना अच्छी बात नही। घर-गृहस्थी चलाने के लिए काम-काज का बोझ तो सर पर उठाना ही पडता है।" "मै नाटक पसारती हूँ और उस बुढ़िया की बातों से तो फूल झडता हे। बात एसी बोलती है–जो सीधे कलेजे मे चुभ जाय।"

नरेश गुर्रा कर बोला–"बुढिया . आखिर ओछे खानदान के लोग .। छोटी बात ही बोलेगे।"

"खानदान तो आपका छोटा है। उस घर मे दूसरा आदमी वास कैसे करेगा सब एक ही तरह का....। तब न सबने मिलकर नलनी दीदी को भगा दिया। मैं तो कहती थी... ।"

नरेश क्रोध से भर उठा–"क्यों दूसरी की बात बोलती हो? अरी, वह तो थी ही–वैसी....। तुम भी उसी की तरह बेहया जैसा बात करती हो।"

"मुँह मे गदी बात मत निकालिये। मै सब कुछ जान चुकी हूँ। नलनी दीदी पूरी तरह निर्दोष थी–किन्तु, आज वह ...।"

"अरे वह निर्दोष क्या रहेगी। मुँह मे राम बगल में छुरी .. ।" "अपनी गलती कोई दिखाना नही चाहता। आप के कारण बेचारी कितने कष्ट में है, जानत है आप....?" सच में तो किसी लड़की वाले को सम्बन्ध ही नहीं करना चाहिए। ई तो केशव आकर मेरे भाई को बातों में उलझा दिया। इसलिए नहीं तो....।"

नरेश क्रोध मे कूदकर खड़ा हो गया। "मेरा खानदान खराब हे? मै चरित्रहीन हूँ? मुँह सम्हालकर कोई बात बोलो तो अच्छा रहगा।"

"मैं बोलूँ या न बोलूँ, जो सच है वह सभी कहेंगे।"

"क्या सच है?"

शीला ने लपककर नरेश की बाँह पकड ली–"आइये, दिखाती हूँ, क्या सच है। आपके कारण क्या दुर्गति हुई है, नलनी दीदी की .. ? चलिये, अपनी आँखो स ही देख लीजिए।"

वैसे भी नरेश की दिली तमन्ना नलनी को देखने की थी और स्थिति भी वैसी ही आ गयी। इसलिय शीला के साथ वह नलनी के आँगन की ओर चल पड़ा।

बढते हुए नरेश बोला–"हाँ-हाँ चलो, देखता हूँ। मेरी छाती पर तो मूँग दलती रही, अब दुर्गति मे है।" "क्यो नही देखना चाहेगे आप? कौन शिकारी घायल शिकार को नही देखना चाहता? उसे तो देखकर अपार खुशी मिलती है

इएह, जिसक पास भले-बुरे का ज्ञान नही, वह करेगा क्या? जिसके पास सोच नही उसे लाज थाडे होती है। तुम्हारे भीतर में हृदय नही, पत्थर ह। तब न एसा कहते हा ...।"

नरेश के कदमों मे बोझिलता भर गयी थी। कुछ बातों की याद आते ही वह पूरी तरह गम्भीर हो चला था।

नलनी का आँगन करीब था। पर जैसे पाँव ही नही उठ रहे थे। शीला उसे धकियाती हुई आगे बढ़ाने लगी।

वासना का ज्वर जब ऊपर को बढ़ता है तो इंसान.. .तलाश करने लगता है, जहाँ उसकी वासना की आग शांत हो। अगर, उसके मार्ग में थोड़ा-बहुत व्यवधान भी उपस्थित हो जाय तो उसे वह हटा देना ही चाहता है। लाज की भी दीवार खड़ी हो जाय तो उसे वह ताड़ देना चाहता है। और उस अभीष्ट व्यक्ति के पास पहुँच जाना चाहता है, जहाँ उसकी भूख शात हो, जहाँ शीतलता मिले।

पथ से गुजरते हुए प्यासे व्यक्ति के निकट नमकीन जल और मीठे जल का दा साता हो तो वह सर्वप्रथम चाहेगा कि मीठे जल का पान करे। पर वहाँ तक जाने मे अगर बहुत बड़ी बाधा उपस्थित हो जाय तो वह नमकीन जल पीकर ही तत्काल अपनी पिपासा शांत कर लेना चाहेगा। हो सकता है; बाद मे वह पुनः मीठे जल के लिए प्रयास करे।

सजय और गिन्नी के बीच आकर्षण हो चला था, आत्मीयता बढ़ती जा रही थी। पर धनजीत दीवार बन कर खड़ा हो जाता था कभी--कभी .. ।

गिन्नी की ओर से जिस चीज का संकेत मात्र मिलता, उसे सजय पूरा करने के लिए ऐंड़ी-चोटी एक कर देता। जिसके कारण उसकी दुकान की स्थिति भी अच्छी नही रह गयी थी। पर सुरसा के मुँह की तरह उसकी माँग बढती ही जा रही थी।

इस बीच में भी गिन्नी की माँग थी–एक लॉकेट की. . । जिसकी कीमत थी, लगभग सात हजार रुपये। दुकान से अगर इतनी रकम निकल जाती तो दुकान बन्द ही करनी पडती।

इसलिए सजय चाहता था कि घर जाकर सारे गहनें ले आऊँ, और उसे ही बेचकर गिन्नी की माँग पूरी कर दूँ। पर वह पुराने सारे आभूषण नलनी को सोप चुका था, जिसे किसी भी, कीमत पर लाना चाहता था।

उसके कदम अपने गाँव की ओर बढ़ रहे थे। साथ ही मिलन के मधुर क्षणों की याद आ रही थी।

वह जब भी गिन्नी से पूर्ण एकान्त में मिलता, उसके हाव-भाव को परखता, हृदय की धड़कन को सुनता तो उसे ऐसा लगता जैसे गिन्नी अपना सर्वस्व उस पर न्योछावर करने के लिए आतुर है। उसकी एक-एक अदा में आमंत्रण भरा हुआ लगता... ।

संजय अपने आपको बेकाबू-सा महसूस करता। हृदय मे हलचल सी उठती, वासना की आग रग-रग मे सुलगने लगती पर धनजीत का भय जैसे सार अरमानो का कुचल डालता। उससे बराबर डर बना रहता था-अपन स्वजन-परिजन से दूर, अपन ग्रामीणों से दूर, हो सकता है, ये लोग . .।

पर वासना की आग जब भडकती है तो कहीं न कहीं बुझा लेना चाहता है इन्सान... । तृप्ति का साधन खोजने लगता है।

सजय के गाँव आने से दो इच्छा पूरी होने वाली थी-पहली तो नलनी से मिलन पर उसकी वासना की भूख मिटती और दूसरी उससे सारे आभूषण ले लेना, जिसस गिन्नी की माँग पूरी हो जाय।

स्वार्थी और लोभी इन्सान जब अपने स्वार्थ सिद्धि के लिए कदम बढ़ाता हे तो बहुत-सी पुरानी घृणा भरी बातो को भूल जाता है। तत्क्षण दुश्मन को भी दास्त बना लेता है। बपर्दा को भी आवरण से ढककर बातें करता है। क्योकि उसकी आँखो क आगे लोभ ओर स्वार्थ नाचता रहता है।

प्रणय तो उसके लिए सिर्फ छलावा-सा.. .दिखाई पड़ता है, मात्र वासना पूर्ति का साधन. . ।

संजय अपनी दोनो अभिलाषा की पूर्ति हेतु गॉव पहुँच गया था।

तीव्र गति से वह अपने ऑगन की ओर बढ़ा जा रहा था। नलनी का चित्र कभी-कभी उसके मानस-पटल पर नृत्य कर उठता।

वह सोच रहा था-'न जाने मेरी अनुपस्थिति में कैसा हाल हुआ होगा? पलके पसार शायद मेरा इन्तजार करती होगी! मेरी यादों में आहें भरती होगी. .।'

फिर रह- रह कर उसके मन में शका उमड़ने लगी-'कही मुझे भुला तो न गयी होगी? जब मर्दों का ही नहीं कोई भरोसा रहता तो नारी कब तक यादो के सहारे जीती रहेगी? कही ऐसा न हुआ हो कि कोई.. उसके सम्पर्क मे आ गया हो। आखिर मर्द के बिना तो परिवार कवचविहीन सा हो जाता है। मैं भी तो एकाएक गिन्नी के सम्पर्क मे आ गया। नहीं नहीं, ऐसा सम्भव नही है। गॉव के लोग कुछ दूसरी तरह के होते हैं।'

सोचते हुए वह दरवाजे पर पहुँच गया था। पदचाप से उसके ध्यान का क्रम टूटा। नजरे उठी तो वह चकित रह गया।

नरेश उसके आँगन से सिर झुकाये चला आ रहा था। उसे देखकर सजय शीघ्रता के साथ द्वार की ओट मे छिपकर खड़ा हो गया। पर नरेश ने सिर नहीं उठाया। वह तो पश्चाताप की धधकती अग्नि मे मन ही मन झुलस रहा था।

पछतावा तो होता हे-जब कर्म का अवसान हो जाता है। और इन्सान उस भूल का सुधार करने से लाचार हो जाता है, तब वह अनुताप की आग मे जलते हुए जिन्दगी का एक-एक पल काटता रहता है. उससे बचने का कोई भी उपाय उसके सामने नहीं रहता

नरेश को रह-रह कर अपनी पत्नी शीला की बात याद आ रही थी, जो कुछ पल पहले ही शीला की जुबान से निकली थी।

"जो बेदर्द पुरुष स्त्रियों को कष्ट देने और दुर्व्यवहार करने में नहीं हिचकते उस पुरुषों के साथ इस ढंग का सुलूक होना चाहिए कि वह भी दर्द में डूबे रहे। वास्तव में, वैसे बेदर्दों को पीड़ा पहुँचाना ही नारी का धर्म है।"

नरेश उद्विग्नता से भरे हुए सिर झुकाये जब आगे बढ़ गया तो संजय ओट से बाहर निकला। घृणा की अधिकता से रग-रग में लहर सी दौड़ रही थी। उसके मुख से क्रोधयुक्त स्वर उभरा-"साल्ली! सती-साध्वी बन कर दिखाती थी, मुझे। देख लिया तेरा भी सब कुछ...। तू अपने आपको समझती क्या है? चाहूँ तो...। पर अभी नही, समाज के लोग क्या कहेंगे? लेकिन मैं तेरी वह हालत कर दूँगा, न जी सकोगी न मर सकोगी ...। नरेशवा ने तेरे साथ जो किया था, वह ठीक किया था, मेरे सामने जब तेरे पुराने यार आ सकते है, तो न जाने कितने नये यार मेरे पीछे भी आते होंगे। हुँह, हरामजादी... ।"

वह वापस लौट गया। उसे क्या पता था कि उसकी पत्नी किस हालत में है। किस तरह हृदय से उसे पुकार रही है। उसकी यादों के काँटे पल-पल किस ढंग से उसे चुभ रहे हैं। और जिन्दगी के एक-एक लम्हे किस तरह गुजर रहे हैं। आखिर भ्रम ...। उसमें भी पूर्ण झूठा भ्रम मनुष्य को किधर मोड़ देगा क्या पता? संयोग को कब वियोग में परिणत कर देगा, अंदाजा नही... ।

संजय जब कुछ कदम आगे बढ़ा तो चौराहे पर उसके पिता जनेसर आता हुआ दिखाई पड़ा। दुःख में डूबे हुए चेहरे पर हँसी की रेखा खिंच गयी। बोला-"कब आया तू-संजय?"

"अभी ही आया था-पिताजी।"

"तो फिर इतनी जल्दी लौट क्यो रहा है?"

"थोड़ा जरूरी कार्य।"

"अरे बहू की तो बात....।"

वह आगे बोलना ही चाहता था कि संजय ने उसकी बात काट दी-"हाँ-हाँ देख आया हूँ, पिताजी! अपनी आँखो से देख आया हूँ। कहने की कोई जरूरत नही मैं सब कुछ ठीक कर दूँगा। आप चिन्ता न करें।"

बाप कुछ और कहना चाहता था, बेटा ने कुछ और समझ लिया था। पर 'सब कुछ ठीक कर दूँगा।' इस वाक्य से जनेसर को तसल्ली मिल गयी थी। आखिर अपनी आँखों से देखकर लौटा है। उसकी पत्नी है, जरूर सोचेगा। नासमझ तो अब रहा नही, जो समझाऊँ.... ।

जनेसर ने पूछा-"क्या काम था-बेटे?" "देखिये पिताजी। दुकान की हालत अच्छी नहीं है। घर में जितने भी पुराने गहने-जेवर हैं, उसे बेचकर सात हजार रुपये भिजवा दीजिएगा

"ठीक है, ठीक है, तुझे जरूरी है तो तेरा ही सब कुछ है लेकिन तुम आओगे कब तक?"

"आप रुपये भिजवा दीजिएगा। मैं समय पर आ जाऊँगा न.. .।"

अत्यधिक रोष में डूबा हुआ सजय आगे निकल गया था।

प्रभाकर की प्रचण्ड गर्मी फैलने लगी थी।

❖ ❖ ❖

इंसान जब अत्यधिक तेजी मे दौड़ता है तो शीघ्र थक जाता है, इसके बावजूद भी मंजिल न मिली हो तो उसके भीतर अकुलाहट सी छाने लगती है। वह फिर दौड़ना चाहता है।

पर क्या करे. ..? आखिर नयी शक्ति प्राप्त करने के लिए विराम तो बड़ा ही आवश्यक है। अगर आराम करने के बाद भी उसे नयी ताकत न मिली तो कैसी बेचैनी छा जाएगी?

वेगयुक्त बरसाती नदी वर्षा ऋतु मे इठलाती, बलखाती ऊँची-ऊँची पगडी को तोड़ती, कलकल का संगीत बिखेरती हुई तेजी के साथ बढ़ती है। पर बरसात का अंत होते ही उसके मूल उदगम में जल का अभाव हो जाता है। फिर वह कितना शांत और गम्भीर बन जाती है।

एक समय था, जब नरेश थोड़ा सा संदेह होते ही नलनी को अत्यधिक पीड़ित, प्रताड़ित करता था। यहाँ तक कि बेसहारा करके घर से निकाल दिया जैसे उसके साथ कोई स्नेह का बन्धन न हो। शायद नौकरानी के साथ भी लोग इस ढंग से पेश नही आते। किन्तु आज वही नरेश कितना गम्भीर होकर बैठा है, जबकि उसके अन्दर शंकाओं के सघन घन उभर रहे है। वह जानता है कि उसकी दूसरी पत्नी शीला जब से आयी है तब से वैसी ही बातें करती है, जिससे नरेश के हृदय पर आघात लगे.. .।

शीला का ज्यादा वक्त केशव के आंगन में गुजरता है। वह किस तरह मिल गयी है, केशव से... । उसकी एक-एक बात मानने को हर पल तैयार....।

आज तो नरेश अपनी आँखों से देख कर लौटा है-केशव के छोटे भाई से वह किस तरह बाते करती थी, मुँह सटाकर, हँस-हँस कर. ..।

एकान्त आँगन में इस तरह सटकर बैठा देख नरेश की देह मे आग लग गयी थी-किन्तु वह कर ही क्या सकता था? आखिर मुँह जोर औरत बिना लगाम का घोड़ा. ...।

कुछ बोलने से पूर्व ही ऐसा जवाब देती है कि नरेश की बोलती बन्द हो जाती है। ऊपर से कानून का भय....। इधर देबा के बदमाश साथी. .से पिस्तौल का डर नरेश अपने आपको विवशता की सूली पर लटका हुआ महसूस करता जहाँ और कुछ नही सिर्फ अथाह पीड़ा

क्रोध जब भीतर ही भीतर उमडता-घुमडता है, और बाहर निकलने का कोई भी मार्ग नहीं रहता तो मस्तिष्क मे भूकम्प सा मचने लगता है। मनुष्य रोगी की तरह कुंठित होने लगता है और सारे शरीर में विष सा फैलने लगता है। ऐसे ही समय में ससार से रागात्मक लय टूट जाता है, और व्यक्ति विराग की ओर उन्मुख हो जाता है।

उसे सब कुछ छलावा सा दिखाई पडता है। सारा सम्बन्ध एक नाटक सा लगता है। ऐसे समय मे व्यक्ति या तो महानता को स्पर्श करता है या समाज की नजरो में अध:पतन की ओर उन्मुख हो जाता है।

मानसिक विस्फोट वास्तव में बडा ही खतरनाक होता है। अन्दर की गन्दगी बाहर निकलने पर मन स्वच्छ होता है। कलुषित विचार के निष्कासन से विवेक सदा जगता है। पर क्या मन के मैल का निकलना इतना सहज है?

नरेश क्रोध से फुफकारते हुए आँगन वापस लौटा, हाथ में बंसी उठायी और पिछवाड़े मे बनी छोटी तलैया के किनारे जा बैठा।

कुछ दिन पूर्व से ही उसे एकान्त काटने दौड़ता था, गुजरे लम्हे की याद आती तो टीस बनकर पीड़ा उभरती। इसलिए उसने मन बहलाने के उद्देश्य से एक जोड़ी हंस पाल रखा था, जो उसी चमच्च में तैरते रहते और एक दूसरे पर मूकप्रेम की बरसात करते रहते। कभी आपस में झगड़ते, कभी दौडते, कभी जलक्रीडा करते. .।

उनके उन्मुक्त जीवन और प्रेम को देखते हुए नरेश अपने दु:ख को भुलाने का प्रयत्न करता और मन ऊब जाने पर मछली का शिकार करता. .। गाँव, समाज और परिवार से जैसे ऊकताहट सी हो गयी थी। लेकिन जब किनारे पर बैठता तो उसे थोडी सी शांति मिलती। आनन्द का थोडा सा छींटा . .।

वह चमच्चे के किनारे बैठा ही था कि दृष्टि हंस की ओर गयी। वह चौंक उठा।

एक झाड़ी के निकट हंसनी घायल अवस्था में पड़ी हुई थी, और हस उसके निकट खड़ा था, हतप्रभ. ..। जैसे वह भीतर ही रो रहा हो। रह-रहकर वह चोंच से हसनी के शरीर को खुजला देता था। पर उस स्नेह भरे स्पर्श से भी हंसनी को कष्ट ही पहुँचता और उसके मुँह से करुणा में डूबी चीत्कार सी आवाज उभरती....।

विवशता में हंस इधर-उधर गरदन घुमाता, जैसे सहायता के लिए किसी की खोज में लगा हो।

नरेश का मन करुणार्द्र हो उठा। लग रहा था जैसे हसनी को चोट न लगी हो बल्कि उसके हृदय पर कोई जख्म उभर आया हो। वह अश्रुभरे नयन से कुछ पल देखता रहा। फिर उसके मुँह से उस जीव के लिए गाली निकलने लगी, जिसने हंसनी को आघात पहुँचाया था।

हंसनी के जख्म को देखने के उद्देश्य से नरेश ने निकट जाना चाहा पर हंस

चोंच फैलाये नरेश की ओर दौड़ पड़ा.. .। उसे भय था कि उसकी हंसनी को शायद नरेश मार ही देगा।

बहुत देर के बाद नरेश ने किसी तरह हंस को वहाँ से हटाया, तब हसनी के पास जा सका। पर यह क्या....? वह तो अंतिम साँसे गिन रही थी। वह अवाक् हो गया, आँखों में आँसू....। कुछ पल बाद उसके मुख से दुःख में डूबा मद्धिम स्वर उभरा–

तेरे आँसूओं का मोल
तेरे प्यार की कीमत
कौन आँक सकता है?
ओ विरह-व्यथा की आग
जो अपने जोड़े को
देकर जा रही हो,
उसे कौन बुझा सकता है?
मेरी आँखो की तृप्ति
मेरे मन का आनन्द,
कौन लौटा सकता है....?"

उसके नयन से दो बूँद आँसू निकल पड़े। शोक बिह्वल होकर वह बहुत देर तक बैठा रहा।

पीछे से केशव ने पुकारा तो उसका ध्यान भंग हुआ "अरे भाई नरेश! क्यो इस तरह मौन साधे बैठे हो? ये तो खुशी के दिन है तेरे....।"

नरेश ने सिर घुमाकर देखा, पुनः उसकी नजरें हसनी पर गड़ गयी।

केशव निकट आ गया था–"अरे तेरी आँखों मे तो आँसू है! क्या हुआ तुझे....?"

कुछ पल तक नरेश शून्य आकाश की ओर देखता रहा। फिर लम्बी उसाँस छोड़ते हुए बोला–

शर से बिद्ध चिरई
कर रही करुणा-क्रंदन
सनिकट में खड़ा
लोलुप व्याधा
पूछता है–प्रश्न
चीरी से–
कर सकती हो व्याख्या
उस व्यथा की
जो तीर लगने पर तेरी देह में हुई?"

हँसने लगा केशव–"ई ही . ही. । तुम तो भई पूरे कवि बन गये। शायर की तरह बात करते हो।"

"कवि बनना उतना आसान नहीं है–केशव, जितना तुम समझते हो। कवि को तो दिल की गहराई में डूबकर मानस मणि चुनना पड़ता है। उस असहनीय दर्द से गुजरना पड़ता है, जिसे वह चरित्र मे ढालता है। कवि कर्म तो समाज को उठाना है, गिराना नहीं, और तो मैं कुकर्मी हूँ। एक नारी का मैंने पीड़ित और प्रताड़ित करके वैसे अनजाने रास्ते पर धकेल दिया, जहाँ से कोई मंजिल ही न मिल सके।"

"अरे छोड़ो भाई। फिर भी तुम्हारी बातें तो कवि की तरह ही ।"

"ये बातें तो क्रोध के रूप मे उपज रही हैं। मेरे अन्दर जो मेरे रोष का लावा फूटता है, वही शब्द के रूप में बहकर निकलता है।"

तब तक केशव की दृष्टि अचेत हसनी की ओर गई।

"अरे ये तो मर रही है।"

"हाँ सबको एक दिन ऐसे ही इस संसार से विदा होना है। पर इतना कौन सोचता है? सबके सब दुष्कर्म में लिप्त हैं। छल, प्रपञ्च, द्वेष की खाल ओढ सब सच्चे इन्सान का अभिनय कर रहे हैं। पर एक न एक दिन तो नंगा होना ही पड़ेगा, पूरी तरह अनावृत. . ।"

"अरे छोड़ो इन बातों को . ।"

"क्या छोड़ दूँ? तुमने मुझे कहीं का नहीं छोड़ा। अब तो मन करता है सबसे मोह तोड़कर संत की तरह जीवन बसर करूँ। तुमने तो मुझे सब तरह से पंगु बना दिया।"

हँसते हुए केशव कुछ कहना ही चाहता था। कि उसी वक्त हंस चोंच फैलाये दौड़ा हुआ आया। केशव तेजी के साथ वहाँ से चल पड़ा।

"मैं चलता हूँ–भाई! ये तो मुझे काट ही लेगा।"

मद्धिम स्वर में नरेश बोला–"ये तो काटेगा ही। सब नरेश तो नहीं है कि छोड देगा....।"

सहसा शीला की आवाज पीछे से उभरी–"भोजन परोस कर आयी हूँ, खाओगे कि नहीं? दिन भर वहाँ बैठकर न जाने क्या करता रहता है।"

सिर घुमाते हुए नरेश ने जवाब दिया–"मुझे भूख नहीं है।"

"हुँह, भूख नहीं है। मैं गाँव पर घूमने जा रही हूँ। जब भूख लगे तो खा लेना।"

वह जाने को उद्यत हुई, फिर मुड़कर बोली–"सुनो, कल सवेरे देबू भैया आने वाले हैं। कहीं से माँस-मछली का प्रबन्ध कर देना। मै भून के रख दूँगी।"

वह जाने लगी तो नरेश की स्मृति पर न जाने क्या आया उसकी आँखे सजल हो गयीं मुँह से धीमी आवाज निकलने लगी

ऐ जिन्दगी मेरी कहाँ खो गई?
दिल की तमन्ना कहाँ सो गई?
जिसे फूल समझा वही शूल निकला
जिसे शीर्ष समझा वही मूल निकला
ओ मंजिल की किरणें कहाँ खो गई?
ऐ जिन्दगी मेरी कहाँ खो गई?"

पतझड़ के आते ही बटवृक्ष से पुराने पल्लव झर जाते हैं। ठूठ हो जाते हैं अनावृत सा दिखाई पडता है-वृक्ष।

पर ऋतुराज के आते ही पुनः कोमल किसलय उग आते हैं। समशीतोष्ण समीर के साथ फिर एक बार झूमने लगते हैं, इठलाने लगते हैं-कोंपले। जैसे स्थायी तौर पर अपना स्थान ग्रहण कर लिया हो। किन्तु फिर आएगा पतझड और सूख कर गिर जाएंगे-पल्लव दल! धूल में लौटने के लिए...। इतराते वक्त क्यों नही सोचता, पल्लव?

घृणा की लहर ने संजय के दिल में ऐसी कँप-कँपी मचा दी कि उसका मन नलनी की तरफ से पूरी तरह मुड गया। वह गिन्नी पर अपना सर्वस्व न्योछावर करने के लिए तैयार हो गया।

दोनो में प्रेम को तौलने का अवकाश ही नहीं था। कौन सा छलावा है, और कौन सच्चा है। यह जानने की भी उसे फुर्सत नहीं थी। प्यास मृग की तरह वह बेतहाशा दौड़ने लगा। भ्रम ने उसे पूरी तरह अंक में ले लिया। और वह बिना देखे सुने ही बढ़ने लगा, उस मार्ग पर-जो अनजान था। सिर्फ अँधेरों से भरा हुआ ..।

वासनारूपी भुजंग जब इन्सान को डसता है तो वह काम की आग में बुरी तरह जलने लगता है। इन्सान इतना व्याकुल हो उठता है कि उसे कुछ देखने की सुध ही नहीं रहती। सिर्फ काम-पिपास को शांत करने के लिए दौड पड़ता है। विवेक की शृंखला कब टूट जाती है। उसे पता नही चलता है। जब वह सचेत होता है तब उसके आगे सिर्फ पश्चाताप रह जाता है। सघन-तम घिरा हुआ कटकमय मार्ग.. ।

उससे निकल कर प्रकाश भरे रास्ते पर पहुँचना बहुत ही कठिन हो जाता है।

सुधांशु अपनी सुधामय किरणें बिखेरता हुआ मध्य आसमान में पहुँच गया था। मधुमास के मलयानिल का झोंका कभी-कभी शरीर को सिहरा देता।

धनजीत के आवास पर इस वक्त सिर्फ दो व्यक्ति थे-संजय और गिन्नी दोनों अपने अपने कार्य में संलग्न इसलिए पूरी तरह एकान्त सा लग रहा था

धनजीत अभी तक दुकान से नही लौटा था। रसाई घर में गिन्नी खाना बनाने मे व्यस्त थी।

संजय अपने कमरे मे दुकान के आय-व्यय की बही देख रहा था पर उसका मन कही और था। रह-रह कर दरवाजे की आर झॉक कर देखने लगता "ओह, गिन्नी क्यो नहीं आती है इधर . .। अभी तक शायद धनजीत नहीं लौटा है। न जाने रसाई मे क्या कर रही है, इतनी देर से। अभी आती तो ठीक था, सारी बातें हो जाती ।

वह स्थिर मन से आय-व्यय का हिसाब लगाता, पर कामातुर मन चचल हो उटता और रगीन सपनो की दुनियाँ मे भटकने लगता .. ।

उधर गिन्नी के दिल में भी हलचल थी। लेकिन उसे भोजन बनाना भी था। इसलिए सजय से मिलने की उत्कठा को दबाये वह शीघ्र भोजन बना लेना चाहती थी। कहीं एकाएक भाई साहब आ जाय और पूछने लगे तो जवाब देना मुश्किल ।

सजय से नहीं रहा गया तो वह बिछावन से उतर कर बाहर निकलने का उद्यत हुआ। सहसा चूडियो की खन-खनाहट सुनाई पड़ी। उसका दिल तेजी से धड़क उठा। बही मे नजरें गड़ाये, मौन साध लिया तभी गिन्नी की सुरीली आवाज उसके कानों में पड़ी-"भोजन भी करोगे कि सिर्फ काम ही काम?"

संजय ने सिर उठाया-"गिन्नी तुम ...। इधर आओ न, भोजन तो करूँगा ही उससे पहले .. । अच्छा, धनजीत भैया तो नहीं लौटे हैं, अभी तक.. .?"

हँसती हुई गिन्नी बोली-"डरते हो क्या?" "डरूँगा क्यों? जब हम दोनो शादी करने के लिए तैयार हैं तो फिर डर किस बात का ...? तो भी...।"

"हॉ भाई साहब भी बोल रहे थे शायद तुम्हारी पहली पत्नी के विषय मे. . । जो घर पर ही है।"

"अरी गिन्नी उसकी बात छोड़ो। वह तो साली घर पर ही मर-खप जाएगी, मुझे वहॉ थोड़े जाना है। अब तो मैं यहीं रहूँगा। यहाँ तो सिर्फ तुम और हम.. .।"

कहते हुए उसने हाथ बढ़ा कर उसके कोमल कपोल का स्पर्श किया।

गिन्नी का मुख लाज से लाल हो गया। वह उठने लगी तो संजय ने उसकी बॉह पकड़कर पुन: बैठाते हुए कहा-"इस तरह क्यो भागना चाहती हो? आज मैं तेरे लिए वह लॉकेट लाया हूँ, जिसकी तुमने मॉग की थी।"

कहते हुए उसने जेब से लॉकेट निकाला। गिन्नी के चेहरे पर खुशी की रेखा तन गयी थी। बोली-"अहा-हा...। बहुत सुन्दर है। कितनी कीमत का है?"

संजय स्वर में लापरवाही भरे हुए था। उसने कहा-"अरे छोड़ो....। अपनों को लोग जो कुछ देता है, उसकी कीमत नहीं होती।"

मद्धिम स्वर में उसने पुन: आगे कहा-"गिन्नू! मैं यह लॉकेट अपने हाथो से तेरे गले में पहनाना चाहता हूँ। क्या पहना दूँ?"

सरकती हुई समीप जाकर गिन्नी बोली-"तो पहना दो। तुझे मैंने कब मना किया कुछ करने से ' तुम तो अपने हर पल सकुचाते रहते हो "

उसकी बात से जैसे संजय क मन मे गुदगुदी सी उठने लगी। हृदय तेजी से धड़कने लगा। उसने कम्पित हाथों से गिन्नी के गले मे लॉकेट पहना दिया। और उसके मुख को चूम लिया।

सहसा कमरे से बाहर शोर सुनाई पड़ा। "पकडो, साले को मारो....।"

धनजीत अपने दो हट्टे-कट्टे साथियो के साथ कमरे मे पहुँचा। सजय कुछ बोलता उससे पहले ही उसकी पिटाई जूतो से होने लगी।

भयभीत सी किनारे खडी गिन्नी बोली-"भैया, आप क्यो पीट रह हे इसे?"

'चटाक' धनजीत का तमाचा उसके गाल पर लगा। सक्रोध बोला-"बशर्म, मेरे सामने ही कुकर्म करती हो और जबान चलाती हो।"

मार खाने के उपरान्त भी गिन्नी बोल पडी-"आप तो स्वय उकसाते थे, सजय के पास जाने के लिए बार-बार कहते थे, और आज. ..। इसकी कोई गलती नही है।"

गिन्नी कुछ और बोलती उससे पहले ही धनजीत ने उसके बाल पकड़ लिय और दूसरे कमरे में जाकर बन्द कर दिया।

सजय स्तम्भित होकर जूते और तमाचे खाता रहा। जब उसे असहनीय पीडा होने लगी तो भागना चाहा। धनजीत ने लपककर उसकी गरदन पकड़ ली, और गुर्राते हुए बोला-"साले घर में रहकर मेरी ही इज्जत की धज्जियाँ उडाने लगा। निकल जाओ यहाँ से, नही तो खून पी जाऊँगा। फिर इधर आया,तो मुँह पर कालिख लेप दूँगा, और गदहे पर बिठाकर पूरे मुहल्ले की सैर करवाऊँगा।"

उसका एक साथी गरजते हुए बोला-"नही धनजीत भाई! साले पर बलात्कारी मुकदमा ठोक दो। जिन्दगी भर जेल में चक्की पीसेगा।"

उसका दूसरा साथी टपक पड़ा-"नही! मेरी बात मानों तो हरामी को खत्म ही कर दो। साले की लाश को नदी मे फेंक देंगे।"

कहते हुए उसने पीठ पर लाठी बरसानी शुरू कर दी। सजय ने जब समझा कि जान बचानी मुश्किल है तो वह झटके के साथ अपना गला छुड़ाया और कमर से बाहर की ओर भागा।

तीनो 'चोर-चोर' करते हुए पीछे से खदेरने लगे। किन्तु, जहाँ जान जाने का भय बना हो वहाँ शक्ति दुगूनी हो जाती है।

पीछा करने वाले वापस लौट गये थे फिर भी वह पूरे वेग क साथ उस मुहल्ले से बाहर निकल गया। पर शक्तिक्षीण होती जा रही थी। शरीर पसीने से सराबोर .. । पैर से पत्थर टकराया और वह चीख उठा-"अरे बार रे बाप....।"

फिर वह चेतनाशून्य भूमि पर गिर पड़ा।

रजनी अपना सफर तय करती रही।

❖ ❖ ❖

यौवन का आरम्भ होते ही कल्पनाओं का भण्डार बहुत विस्तृत हो जाता है। मन ऊँची उड़ानें भरने लगता है, और ख्वाबों की दुनियाँ में उड़ता हुआ इन्सान भारी भूल कर बैठता है। जिसके कारण लड़खड़ाकर उसे यथार्थ भूमि पर गिरना पड़ता है।

गिरने के बाद कुछ इन्सान सम्हल जाते हैं। संघर्ष के द्वारा सुकर्म करने लगते हैं। उनका जीवन स्वर्ग के समान हो जाता है। लेकिन इसके बावजूद भी कुछ नहीं सम्हल पाते, और वे निरन्तर पतन की अँधेरी गुफा में भटकते रहते हैं। उनका जीवन नारकीय हो जाता है।

नलनी रोग शैय्या पर पड़ी हुई.. व्यथित होकर एक-एक पल काट रही थी। बीती जिन्दगी के पन्ने को पलटती तो रह-रहकर उसका मन कचोटने लगता नेत्र में ऑसुओ की बूँदें झिलमिलाने लगतीं।

घंटे भर पूर्व से ही सोमनाथ उसके निकट में बैठा हुआ था। उसकी आँखों में भी आँसू थे। फिर भी वह नलनी को सांत्वना दे रहा था। आँसू पोछते हुए उसने कहा–"तुझे मेरे साथ जाना होगा। माँ ने तुझे आने के लिए कहा है। अब वह जान गयी है--नलनी! सारी गलती तो मेरी कलमुँही बीबी की थी। उसी के कारण तुझे... ।"

उसका गला भर आया था। उसने थूक निगलते हुए आगे कहा–"चलो, अब यहाँ क्या करोगी? काती घर से भाग गयी। अब तो वहाँ सिर्फ मैं हूँ और माँ। तुझे किसी प्रकार का कष्ट न होने दूँगा।"

आर्द्र कंठ से नलनी बोली–"भैया! मुझे कहाँ ले जाओगे? दु:ख तो मेरे भाग्य मे लिखा है, जैसे यहाँ वैसे वहाँ ... । हाँ, भाभी को अवश्य ले आना। गलती किससे नहीं होती? पर ठोकर लगने से बुद्धि बढ़ती है।

उसे क्षमा कर देना। मैं सच कहती हूँ–अब वह सही राह पर चलेगी।"

"लेकिन मेरा तो अलग विचार था। मैं तो चाहता था–ऐसी कुकर्मी औरत को कठिन से कठिन सजा. . ।"

"नहीं नहीं, ऐसा मत करना भैया।"

सोमनाथ के मुख पर अचरज का भाव था वह बोला–"उसी ने तो तुझे कहीं का नहीं छोड़ा, घर से बेघर करके....। और कलंक का इतना बड़ा दाग तेरे माथे पर लगा दिया।"

"इस बात को छोड़ दो भैया। इन्सान तो अपने कर्म से भला-बुरा कहलाता है। जब कर्म में सुधार हो जाय तो उसे अधम कहना उचित नहीं। सब कुछ भूल कर उसे अपना लो। अपनी गलती को जानकर वह भी तेरे कदमों मे लोटेगी।"

सोमनाथ सोचने लगा–'जिस औरत ने इसे षड़यंत्र के जाल में फँसाकर

इतनी बडी तोहमत लगा दी, दुःख की आग में धकेल दिया उसके लिए ही नलनी क हृदय मे अपार स्नेह भरा हुआ है। कितनी सरल और निष्कपट है, यह नारी? ऐस सच्चे इन्सान को मेरे परिवार में कितना कष्ट उठाना पड़ा?'

वह आन्तरिक व्यथा में इतना भर उठा कि रुलाई रोकना उसके लिए असम्भव सा जान पड़ा। वह ततक्षण ही उठकर जाने को तैयार हो गया।

उसे उठते देख नलनी बोल पडी–"भैया मेरी माँ मिले या न मिले, मौसी को मेरा प्रणाम कहना। न जाने उसके दर्शन की अभिलाषा कब पूरी होगी।"

सोमनाथ शीघ्रता के साथ घर मे निकल गया। बाहर आते ही उसकी आँखो म आँसुओं की बरसात शुरू हो गयी।

कुछ क्षण उपरान्त ही सुभद्रा और शीला बातें करती हुई नलनी के पास पहुँची।

उन दोनो के पीछे सजय न भी छिपते हुए आँगन मे कदम रखा। उसके सिर ओर पैर में पट्टी बँधी हुई थी। लाज से अभिभूत होकर वह घर के भीतर जाने का साहस न कर सका। ओसारे के एक कोने में ही चुप्पी साधे खड़ा हो गया। उसे कोई नही देख रहा था। क्योंकि तीनों स्त्रियाँ घर के भीतर बातो में तल्लीन थी।

नलनी ने कुछ पल के लिए आँखे मूँद ली थी। उसे आज सवेरे से ही विशष व्यथा का अनुभव हो रहा था। उसकी बाँह पकडकर हिलाती हुई शीला बोली "भाभी ऽऽ .. । तुम तो बहुत कमजोर हो गयी हो . . ।"

नलनी के मलिन मुख पर हल्की सी रेखा खिच गयी।

"अरी शीलू, कब आयी तू?"

"साँझ में आयी। और रात भर तेरे ही बारे में सोचती रही।"

"अच्छा, अब खुश हो न? किसी प्रकार का कष्ट तो नहीं होता?"

हँसती हुई शीला ने कहा–"तुम अपने जैसा ही सबको समझती हो। मैं तो पूरे परिवार को ठीक कर दूँगी। दाँत टूटन के बाद बुढिया तो डर से बोलती नही है और पति की तो बात ही छोड़ो. . । जिस दिन उसे तेरे पास लायी थी, तुम्हारे कष्ट को देखकर उस दिन से ही वह दु:खी रहने लगा था। ऊपर से ऐसी ऐसी चाल चली, जिससे उसके कलेजे में हमेशा शूल चुभता रहा। हर पल बातों मे ठोकर देती हूँ। पता चला होगा कि पत्नी कैसी होती है। अब तो बेचारे पागल की तरह अडबड बकते रहते हैं। दिन भर तालाब के किनारे सन्यासी की तरह बैठ रहते हैं।"

कुछ पल तक नलनी उसके मुख की ओर देखती रही। फिर लम्बी साँस छोड़ती हुई बोली–"तुम जो करती हो–शीलू, वह अच्छी बात नहीं। आखिर पति पत्नी का सम्बन्ध । जरा सा संदेह और प्रपंच का धक्का लगते ही वह लड़खड़ा टूट जाता है मेरे कारण तुम अपनी जिन्दगी बरबाद मत करो

"हुँह .., मै उतना डरी हुई नहीं हूँ भाभी। देबू भैया हमारे साथ हैं। कानून भी हमारी सहायता करेगा। फिर डर किस बात का .. ?"

"शील्, सब दिन होत न एक समाना. . । पति पत्नी के बीच मधुर सम्बन्ध हो तो जीवन बदला लेने के लिए नहीं, एक दूसरे पर न्योछावर होने के लिए होता है। अब मेरे बारे मे ही सोचो–आखिर क्या गलती है मेरी? मै क्यों इस तरह कष्ट मे हूँ?"

बड़ी-बड़ी ऑखो से घूरती हुई शीला बोली–"कहती तो तुम ठीक हो–भाभी। आखिर तेरा क्या कसूर है? तेरी जैसी औरत मैंने देखी ही नही। निर्दोष, सरल, चुप्पी साध कर सारे दुखो को सहन वाली ....। न जाने भाई साहब को क्या हुआ जो तेरे जैसा अमूल्य रत्न को गॅवाकर परदेशी बने भटक रहे है।"

नलनी बोली–"यही तो कह रही हूँ–मुझे जिस हालत में वे लाये सारी बाते उनकी जानी पहचानी हुई थीं। यहॉ आने के बाद मैंने ऐसा कोई कुकर्म नही किया, जिसमे उनको दु:ख पहुँचे। ऐसा कदम न उठाया, जिससे इस खानदान के ऊपर कोई ऊँगली उठावे। फिर भी निर्मोही बनकर मुझ से रूठे बैठे हैं। कई बार संवाद पहुँचा होगा। पिताजी भी गये थे, फिर भी.....।"

नलनी सिर घुमाकर सुभद्रा की ओर मुड़ गयी और पूछने लगी–"क्या आज भी वे नहीं आये? क्या उसे देखे बिना ही .?"

आँखो में आये आँसुओं को पोछती हुई उसने आगे कहा–"अगर मिलते तो पूछती उनसे–आखिर मुझसे अपराध क्या हुआ. ..जो अपराधिन की भाँति मैं... ।"

कमजोरी के कारण उसने ऑखे मूँद ली। आँसू लुढ़ककर गालों पर बहने लगे।

सुभद्रा उसे सांत्वना देती हुई बोली–"तुम तो बेकार घबराती हो। पहले तुझे खिला-पिला देती हूँ, फिर आज मैं स्वयं सजय के पास जाऊँगी। और घसीटते हुए लाऊँगी मैं. ...।"

"दीदी! अब तो व्यथा के कारण भीतर का हस उडने के लिए छटपटा रहा है।"

कुछ पल तक नलनी मौन रही फिर मद्धिम स्वर मे गुनगुना उठी। दर्द मे भीगी आवाज....।

"आवै के बेरिया सब कोई जाने
दुआरे पर बाजे बधाई
जाए के बेरिया कोई नही जाने
हँसा अकेला चलि जाई।"

आगे वह गा नहीं सकी। मुँह के बल बिछावन पर गिर पड़ी।

रोती हुई शीला बोली–"सुभद्रा भाभी! डॉक्टर को बुलाओ। इसकी तबियत

सुभद्रा ने कहा–''हॉ शीलू, चाचा जी, डॉक्टर को बुलाने शहर गये हैं, आते होंगे। इससे पहले मैं कर ही क्या सकती हूँ।

भीतर की बातें सुनकर सजय के मन मे सदेह का अंधड उठने लगा। कलजे की धुकधुकी तेज हो गयी।

वह त्वरित वेग से भीतर आया, और नलनी के मुख की ओर दखने लगा। उसकी हालत देखकर वह हतप्रभ रह गया। ऑखों से ऑसू निकल पड़े। अवरुद्ध कंठ से बोला वह–''क्या हो गया इसे? ऐसी दशा कैसे ..?''

आगे बोलने के बदले वह सिसकने लगा। शीला और सुभद्रा उसकी ओर ही देख रही थी। एक की आँखो से क्रोध बरस रहा था तो दूसरी की आँखो से व्यग्य.....।

सुभद्रा बोली.....''सब तेरे कारण हुआ है। तुम्हारे वियोग की आग मे जल गयी बेचारी और तुम.. .।''

सहसा जनेसर के साथ डॉक्टर आता हुआ दिखाई पडा। सुभद्रा हड़बडाती हुई बोली–''जल्दी कुछ कीजिए डॉक्टर साहब! इसकी हालत बहुत खराब है देखिये न. . .।''

डॉक्टर शीघ्रता के साथ अपने कार्य में लग गया। कुछ देर उपचार करने के बाद उसने गम्भीर होकर कहा–''स्थिति कुछ ज्यादा ही नाजुक है। शायद अधिक दिनो से बीमार है।''

सजय ने डाक्टर को झकझोड़ते हुए कहा–''डॉक्टर साहब! इसे किसी तरह बचा लीजिए, नहीं तो मै कही का नही रहूँगा। मेरा जीवन खण्ड-खण्ड हो जाएगा। सच में अपराध तो मेरा है, और सजा किसी और को मिल रही है। अब मै सच्चाई जान गया हूँ।''

धैर्य बंधाते हुए डाक्टर ने कहा–''आप शांत रहे। इसे कुछ पल में ही होश आ जाएगा। लेकिन रोगी की हालत देखते हुए, कल तक कीमती दवाईयॉ शहर से मॅगानी पड़ेगी। इसलिए यथाशीघ्र कुछ पैसों का प्रबन्ध कर लीजिए।''

कुढ़ते हुए जनसेर ने कहा–''अब इतनी जल्दी मे पैसा का प्रबन्ध कहॉ से करूँ? मेरी स्थिति तो अभी भिखारियों जैसी हो गयी है। सारी चीज स्वाहा हो गयी।''

संजय शीघ्रता के साथ बोला–''पैसो का प्रबन्ध चाहे जहाँ होगा, मैं करूँगा। लेकिन किसी तरह इसे बचा लीजिए–डॉक्टर साहब।''

कहते हुए वह नलनी के निकट चला गया और उसके सर पर हाथ

आँखों में नयी आशा की ज्योति दमक उठी। ऐसा लगा, जैसे नस-नस मे सजीवनी रस समाता जा रहा हो। हर्षातिरेक में नयनों से नीर बहने लगा। सूखे ओंठ थरथराने लगे।

संजय का मुख खुशी से चमकने लगा। डॉक्टर ने निश्चिन्तता की साँस ली फिर उसने पुर्जा बढाते हुए कहा–"कल तक दवा मँगा लीजिएगा। अब स्थिति मे निरन्तर सुधार होता ही जाएगा।"

कहते हुए डॉक्टर चल पड़ा। पीछे से उसका बैग लिए जनेसर भी बाहर निकल गया।

संजय आगे बढ़कर नलनी के सन्निकट बैठ गया और उसके उलझे केश-पाश को सुलझाते हुए बोला–"नलनी वास्तव मे मैं यथार्थ से दूर कल्पनालोक मे भटकता रहा। मैंने तेरे दिल को बहुत दुखाया है। तुम चाहे जो सजा दो, मुझे मंजूर है। सिर्फ अपने दिल के किसी कोने में जगह दे दो। मुझ पापी को माफ कर दो।"

सुभद्रा और शीला एक दूसरे की ओर देख कर मुस्कुरा रही थीं। सुभद्रा व्यंग्यभरी वाणी में बोल उठी–"आज तो पुजारी देवी की चरणधूलि लेना चाहते है। किन्तु कल समाज के कोई लुच्चे कुछ कह दे तो फिर भाग खड़े होंगे।"

संजय ने विश्वासभरे शब्दों में कहा–"भाभी! मैं भागूँगा नहीं, अब अन्याय और झूठ का विरोध करूँगा। मै यहीं रहूँगा और अपनी माटी से संघर्ष करूँगा। कम से कम कुछ लोगों के दिल में भी मै प्रेम और विश्वास पैदा करना चाहता हूँ। किन्तु इसके लिए मुझे आप जैसी देवी का आशीर्वाद चाहिए और नलनी जैसी सहचरी का सहयोग. . ।"

नलनी का मन अन्दर ही अन्दर प्रसन्नता से गदगद हो उठा।

सुभद्रा हाथ उठाकर बोली–"अच्छे कर्म के लिए तो हरपल मेरा आशीर्वाद तेरे साथ है, पर नलनी की बात तो वही जानेगी।"

संजय ने भाभी का इशारा समझ लिया। उसने नलनी के मुख को दोनो हथेलियों के बीच ले लिया और आगे झुककर बोला–"तुम बोलती क्यों नही? क्या मुझे माफी नहीं मिलेगी? क्या मै, फिर से वही पहले का प्रेम नहीं पा सकता? हॉं कह दो नही तो मैं .. ।"

अशक्त नलनी की पतली-सी आवाज निकली–"धत्.. . ! लाज नहीं आती। दीदी सब देख सुन रही हैं।"

सम्मिलित हँसी गूँज उठी।

❑❑

नेयाँ

लों)

की
ाकः
लय
डॉ0
मृति

लेखन
और
पत्नी,

ग्रह-
लाल
ालक
कसम
-मेढे
न्दी),
यास-

मेली)
ार)
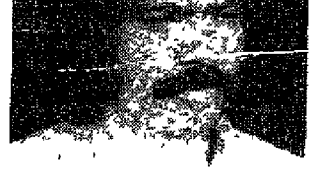
## राजदेव प्रियंकर

| | |
|---|---|
| **जन्म** | : 15 मार्च 1960 मशहूरनियाँ (मधुवनी, बिहार) |
| **शिक्षा एवं उपलब्धियाँ** | : एम0 ए0 (हिन्दी, मैथिली) एल0 एल0 बी0<br>हिन्दी भाषा/समाज की अमूल्य सेवा हेतु निदेशक: केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, दिल्ली द्वारा पद्मश्री डॉ0 लक्ष्मीनारायण दुबे स्मृति सम्मान प्राप्त। |
| **कार्य क्षेत्र** | : समाज सेवा, स्वतंत्र लेखन |
| **प्रकाशित कृतियाँ** | : उपन्यास 1. जिन्दगी और नाव, 2. पिंजरे के पंछी, 3 दरका हुआ दर्पण |
| **अप्रकाशित कृतियाँ** | : अम्बरा (काव्य सग्रह-मैथिलो), माटी के लाल (उपन्यास-मैथिली), तिलक (नाटक-हिन्दी), कसम (नाटक-हिन्दी), टेढ़े-मेढे चित्र (कहानी-सग्रह हिन्दी), जीवन संग्राम (उपन्यास-हिन्दी) |
| **सम्पर्क सूत्र** | : ग्राम-मशहूरनियाँ<br>पोस्ट-रतनसारा (निर्मली)<br>जिला-मधुवनी (बिहार)<br>पिन - 847452 |